श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रील श्रीजीवगोस्वामिप्रभुपाद-विरचिते

श्रीभागवतसन्दर्भे

पञ्चमः

श्रीभक्तिसन्दर्भः

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,

काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क

वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा

सम्पादितः ।

"भारतशासनाधीनशिक्षासंस्कृतिमन्त्रणालयतः
प्राप्तसाहाय्येन मुद्रितोऽयं ग्रन्थः"

"Published with the financial assistance from the
Ministry of Education. Govrnment of India."

सद्ग्रन्थप्रकाशक

श्रीगदाधरगौरहरिप्रेस

श्रीहरिदास निवास, कालीदह,

पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा,

(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

मुद्रक*प्रकाशक :—

श्रीहरिदासशास्त्री

श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस, श्रीहरिदास निवास, कालीदह,

पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा (उ० प्र०)

पिन—२८११२१

प्रथमसंस्करणम्—एकसहस्रम्

प्रकाशनतिथि—२७।७।८५

श्रीगौराङ्गाब्द ४९९

खृष्टाब्द १९८५

❊ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयतेताम् ❊

विज्ञप्तिः

श्रीचैतन्यमतानुगा बहुविधस्तत्त्वैः समुद्भासिता ।
सद्भक्ति प्रतिपालनी सुवचसा प्रेमार्थ संस्थापिका ॥
जीवातुर्हरिभक्तजीवनिचये चित्तश्रुतिप्रीतिदा ।
श्रीजीवप्रतिभा जगद्विजयिनी सर्वैधिया धार्य्यताम् ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीजीवकृत भागवत सन्दर्भ (षट्सन्दर्भ) के अन्तर्गत पञ्चम सन्दर्भ है। ग्रन्थोपसंहार में लिखित है—"कलियुग पावन स्वभजन विभजन प्रयोजनावतार—श्रीश्रीभगवत् कृष्णचैतन्यदेव–चरणानुचर विश्ववैष्णव राजसभा सभाजन भाजन–श्रीरूप सनातनानुशासन–भारतीगर्भे षट् सन्दर्भात्मके श्रीश्रीभागवत सन्दर्भे श्रीश्रीभक्तिसन्दर्भोनाम पञ्चमः सन्दर्भः" अर्थात् कलियुग के उपायस्वरूप जो निज भजन (भगवद्-भजन) वह भजन वितरण ही जिनके अवतार का प्रयोजन है, उन श्रीभगवान् श्रीकृष्णचैतन्यदेव के श्री-चरणानुचर एवं विश्ववैष्णव राजसभा के सम्माननीयपात्र जो श्रीरूप सनातन हैं, उनके उपदेश वाक्य जिसके मध्य में है,–इस प्रकार भागवत-सन्दर्भ के अन्तर्भुक्त भक्ति-सन्दर्भ नामक यह पञ्चम सन्दर्भ है। ग्रन्थारम्भ में लिखित है—

तौ सन्तोषयता सन्तौ श्रीलरूप सनातनौ ।
दाक्षिणात्येन भट्टेन पुनरेतद् विचार्य्यते ॥
तस्याद्यं ग्रन्थनालेखं क्रान्तव्युत्कान्त खण्डितम् ।
पर्य्यालोच्याथ पर्य्यायं कृत्वा लिखति जीवकः ॥

अर्थात् श्रीवृन्दावन में सतत विराजमान तपस्यादि सम्पत्तियुक्त श्रीरूपसनातन गोस्वामिद्वय के सन्तोषार्थ दाक्षिणात्य विप्र कुलोद्भव श्रीमन्महाप्रभु के प्रिय पार्षद भट्टवंश सम्भूत श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी प्राक्तन दाक्षिणात्य आचार्य्यवृन्द के संग्रह ग्रन्थ से विचार पूर्वक एक सारसंग्रह ग्रन्थ किये थे। किन्तु उक्त सङ्कलन ग्रन्थ में श्रीभगवत सिद्धान्त समूह क्रम पूर्वक, विपरीत क्रम से, एवं खण्डित क्रम से विन्यस्त थे। तत् समुदय की समालोचना करके क्रम निबन्धन पूर्वक श्रीजीवगोस्वामी यह ग्रन्थ लिख रहे हैं। किसी प्रयोजक कर्त्ता के अधीन होकर यह ग्रन्थलिखन कार्य्य करते हैं, इस प्रकार स्वीय निरभिमानिता को प्रकट करने के निमित्त ही 'लिखामि' के स्थल में 'लिखति' का प्रयोग हुआ है।

श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के भाष्यस्वरूप प्रस्तुत सन्दर्भ ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं, ग्रन्थ एवं श्रीकृष्ण का वाच्य वाचकतारूप 'सम्बन्ध' है। श्रवण कीर्त्तनादि नवधा भक्ति–अभिधेय हैं, एवं 'प्रेम' प्रयोजन है। समग्र ग्रन्थ में मूल श्लोक एवं लेख्य संख्या का क्रम इस प्रकार है :—

(१) श्रीतत्त्वसन्दर्भ–२५,–४७५, (२) श्रीभगवत् सन्दर्भ–१०२–२७४० (३) श्रीपरमात्म सन्दर्भ–१०६, २७५८ (४) श्रीकृष्णसन्दर्भ १८९–३१०५ (५) श्रीभक्तिसन्दर्भ ३४०, ४६२६ (६) श्रीप्रीतिसन्दर्भ ४२९ –४३०० ।

तत्त्वसन्दर्भ का प्रधान आलोच्य विषय है, श्रीमद्भागवत का सर्व प्रमाण श्रेष्ठत्व, सामान्यतः तत्त्व निरूपण एवं सर्ग विसर्गादि की व्याख्या। भगवत् सन्दर्भ नामक द्वितीय सन्दर्भ में ब्रह्म परमात्मादि भेद से तत्त्व निरूपण, ब्रह्मादि की आविर्भाव योग्यता, एवं विभेद, वैकुण्ठ निरूपण, मायाशक्ति, स्वरूप शक्ति प्रभृति की आलोचना, श्रीविग्रह का नित्यत्व एवं पूर्णत्व, ब्रह्म एवं भगवान् के स्वरूप प्रभृति विचारित हैं। तृतीय सन्दर्भात्मक श्रीपरमात्म सन्दर्भ में आलोच्य विषय यह है—परमात्मा, जीव, माया, जगत्, निर्गुण-सगुण विचार, भगवल्लीला का प्रयोजन प्रभृति। श्रीकृष्णसन्दर्भ नामक चतुर्थ सन्दर्भ में वर्णित विषयसमूह इस प्रकार हैं—श्रीकृष्ण की ही स्वयं भगवत्ता, अंशादि का श्रीकृष्ण में प्रवेश एवं नित्यस्थिति गोलोक निरूपण, श्रीवृन्दावनादि का नित्य कृष्णधामत्व, गोलोक वृन्दावन का एकत्व, यदु गोप प्रभृति का नित्य-परिकरत्व, प्रकट एवं अप्रकट लीलवस्था, महिषीवृन्द का स्वरूप शक्तित्व, गोपीवृन्द का उत्कर्ष, एवं श्रीराधिका का सर्वोत्कर्ष प्रभृति।

पञ्चम सन्दर्भात्मक भक्तिसन्दर्भ का आलोच्य विषय यह है—भक्ति किसको करनी चाहिये ? भक्ति क्यों करेंगे ? भक्ति करने का अधिकारी कौन है ? भक्ति किसको कहते हैं ? भक्ति का स्वरूप वर्णन प्रसङ्ग में प्रथमतः आरोपसिद्धा, सङ्गसिद्धा, एवं स्वरूपसिद्धा–त्रिविध विभाग करके स्वरूपसिद्धा शुद्धाभक्ति भक्ति के वैधी एवं रागानुगा—यह द्विविध प्रकार वर्णित है। अर्थात् भक्ति का अभिधेयत्व, कर्म, योग, ज्ञान का आपेक्षिक अपकर्ष, सकाम एवं निष्काम भक्ति, भक्ति का लक्षण, वैधी भक्ति, शरणापत्ति, श्रवण कीर्त्तनादि का विवरण, सेवापराध, रागानुगाभक्ति, श्रीकृष्ण भजन का वैशिष्ट्य, सिद्धक्रम प्रभृति। श्रीभगवत् प्रीति का परमपुरुषार्थ निरूपण, प्रीति एवं मुक्ति का तारतम्य, मुक्ति का प्रकार भेद, प्रीति के स्वरूप एवं तटस्थ लक्षण, श्रीकृष्ण प्रीति की श्रेष्ठता, गोपीप्रेम, शान्त दास्यादि लक्षणाभक्ति, विभाव अनुभाव प्रभृति का विचार, धीरोदात्तादि का निर्णय, सम्भोग विप्रलम्भादि भेद, श्रीराधा की महिमा प्रभृति प्रीति सन्दर्भ के आलोच्य विषय हैं।

भक्तिसन्दर्भ के अनुच्छेद समूह में सन्निविष्ट विषयों का विवरण निम्नोक्त प्रकार है—

अनु० १-९८। अन्वय मुख से भक्ति महिमा, संक्षेप से सम्बन्ध, अभिधेय एवं प्रयोजन। जीव द्विविध पूर्वसंस्कारवान् एवं वर्त्तमान् में लब्ध कृपावान्। (१) भक्ति का सुखात्मकत्व। (२) भजनीय स्वरूप एवं आत्म प्रसन्नता। भक्ति का परम धर्मत्व, ज्ञान कर्म्मादि भक्तिमुखापेक्षी हेतु भक्ति द्वारा ही भगवान् भजनीय। गुरुशिष्यभाव से प्रवृत्त उपदेश वाक्य श्रीभागवत (१।२।११)का तात्पर्य्य भक्ति ही है। श्रीशौनक के प्रति श्रीसूत के उपदेश का सारार्थ (१८) कर्म, ज्ञान, एवं वैराग्य के प्रति यत्न परित्याग पूर्वक भक्ति करना ही कर्त्तव्य है।(१९) त्रिविध कारणों से मङ्गलकामी के पक्ष में श्रीविष्णुवत् ब्रह्मा एवं शिव उपास्य नहीं हैं। (२०) विष्णु उपासक के पक्ष में देवतान्तर की निन्दा सर्वथा वर्जनीय है। (२१) रजः तमः प्रकृति के व्यक्ति,-विष्णु भिन्न अन्य देवता का उपासक होता है। (२३) श्रीनारद व्यास संवाद का सारार्थ भी भक्ति ही है। भा० प्रथमस्कन्ध (२४-३२) श्रीशुक परीक्षित् संवाद का सार भी भक्ति ही है। भा० द्वितीय स्कन्ध। (२७) भक्तियोग में रुचि के पूर्व पर्य्यन्त ही काम्यकर्म्माचरण विहित है। भा० २ स्कन्ध १ अध्याय में विराट धारणा का उपदेश प्रदान के पश्चात् अपवाद न्याय से भक्ति ही कर्त्तव्य रूप में उपदिष्ट है।(२८) सद्योमुक्ति एवं क्रममुक्ति की अपेक्षा भगवत्प्रीति श्रेष्ठ है। (२९) भक्तियोग सर्व वेद सिद्ध है। (३१)अकाम, सर्वकाम, वा मोक्षकाम व्यक्ति के पक्ष में भक्ति ही विहित है। (३२) तीव्राभक्ति ही शुद्धाभक्ति में परिणता होती है। किन्तु याहच्छिक भक्ति के द्वारा ही कामना पूर्त्ति होती है। यज्ञादि कार्य्य में खादिर यूप संयोग-वत् भागवत सङ्ग होने से प्रेम लाभ होता है। (३३) व्यतिरेक मुख से श्रीशौनक ने भी भक्ति का ही अभिधेयत्व स्थापन किया है। भा० (२।३।१७)। भा० २।३ में वर्णित सर्वदेवता उपासना से श्रेष्ठत्व स्थापन

भक्ति का ही हुआ है। (३४) श्रीहरि-गुणानुवादक की आयुः ही सफल है। (३५-४०) श्रीहरिकथा विमुख व्यक्ति, महापशु है, उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग समूह निष्फल हैं। (४१-४२)

श्रीब्रह्म नारद संवाद का सार भी श्रीविष्णु भक्ति है। समस्त वेदों का तात्पर्य्य रूप में श्रीनारायण ही एकमात्र उपास्य हैं। परब्रह्म-श्रीभगवान् की महिमा है। (४३-४५) श्रीविदुर मैत्रेय संवाद में भी उक्त है—भक्तिमार्ग ही सुख रूप वर्त्म है। (४६-४७) श्रीकपिल देवहूति संवाद में भी उक्त है—परतत्त्व ज्ञानहेतु भक्ति ही मङ्गलमय पन्था है। (४८-४६) श्रीपृथुराज के प्रति श्रीकुमार के उपदेश में भक्ति का ही मुख्य अभिधेयत्व विहित है। (५०) श्रीरुद्रगीत में भी भक्ति ही करणीय है। काम्य कर्माद्याग्रह से भक्तचङ्ग अनुष्ठान का विच्छेद करना अकर्त्तव्य है। (५१) श्रीनारद प्रचेता संवाद में उक्त है—व्यतिरेक मुख से विष्णु सेवा भिन्न समस्त इन्द्रियादि विफल हैं (५२) अन्वयमुख से उक्त है—श्रीहरि सेवा के द्वारा ही सकल देवता तृप्त होते हैं। (५३) श्रीऋषभदेव कर्त्तृक स्वपुत्र शिक्षण में उक्त है—(५म स्कन्ध) अकिञ्चन के पक्ष में प्रीति भक्ति का आचरण ही कर्त्तव्य है। श्रीब्राह्मण एवं रहूगण संवाद में उक्त है—श्रीहरिसेवोत्थ ज्ञानाग्नि द्वारा संसार विनष्ट होता है। महत् सङ्ग के द्वारा ही हरिभक्ति होती है। (५४) श्रीचित्रकेतु के प्रति श्रीसङ्कर्षण के उपदेशान्त में (६ स्कन्ध) उक्त है-पुरुष अवशेष में भक्त होता है—(५४-५७) श्रीप्रह्लाद द्वारा असुर-बालकानुशासन में उक्त है (भा० ७।७) कौमार में ही प्रिय सुहृद् श्रीहरि का भजन करना चाहिये। (५८) श्रीनारद-युधिष्ठिर-संवाद में (७।११।६) उक्त है—भक्ति के द्वारा ही मन सुप्रसन्न होता है। भक्ति ही सर्व-पुरुषार्थ हेतु है। भक्ति ही पराविद्या एवं परमाश्रय है (५६-६०) (५६-६१) श्रीजायन्तेयोपाख्यान-श्रीकवि वाक्य में उक्त है—ज्ञानाद्यमिश्र भक्ति का अनुष्ठान श्रवणादि द्वारा करने से साधक क्रमशः अभय होता है एवं अनायास मन निरुद्ध होता है। (६२)

आविर्होत्र वाक्य में उक्त है—कर्म्मादि त्याग करके भक्ति ही कर्त्तव्य है (६३) कर्म मोक्ष हेतु वेद में कर्म विहित हुआ है। श्रद्धा एवं विरक्ति का अनुदय पर्य्यन्त वेदोक्त कर्म ही अनासक्त भाव से ईश्वरार्पण पूर्वक आचरणीय है। शीघ्र देहात्मबुद्धि त्यागेच्छु के पक्ष में वेदोक्त एवं तन्त्रोक्त विधिपूर्वक श्रीकेशव की अर्चना कर्त्तव्य है। (६५) श्रीचमस वाक्य में लिखित है—श्रीहरिसेवक श्रीहरि के द्वारा रहित होकर विघ्न को सोपान करके उन्नति की ओर अग्रसर होता है। श्रीकरभाजन वाक्य में उक्त है—श्रीहरि,-विभिन्न युगों में विभिन्न मार्गों के द्वारा पूजित होते हैं। (६६)

श्रीभगवदुद्धव-संवाद में लिखित है—श्रीहरि के निर्म्माल्यादि की सेवा करके एवं श्रीहरिलीला का स्मरण कीर्त्तन करके भक्त, अनायास माया जय करके श्रीहरि को प्राप्त कर सकता है। (६८) श्रीहरि-लीला रहित वेद-वाक्य का भी अभ्यास न करे। (७०) भक्ति के द्वारा ही ज्ञान सिद्ध होता है। (८०) श्रवणादि भक्ति अनुष्ठान के द्वारा यावत् परिमाण में चित्त शुद्ध होता है, तावत् परिमाण में श्रीभगवत् स्वरूप, गुण, लीला, एवं माधुर्य्य अनुभूत होते हैं। (८४) सर्व फलराज प्रेम-भक्ति मार्ग में ज्ञान वैराग्याभ्यास की आवश्यकता नहीं है। भक्तिअनुष्ठान के द्वारा ही ज्ञानादि लभ्य समस्त वस्तु की प्राप्ति अनायास से होती है।

स्वर्गवाञ्छा, चित्रकेतु की मोक्षवाञ्छा, श्रीशुकदेव की, पार्षदेच्छु भक्तवृन्द की वैकुण्ठेच्छा, की पूर्त्ति प्रेम सेवा के द्वारा ही होती है। (८५) वर्त्तमान मनुष्य शरीर के द्वारा श्रीहरि को प्राप्त करना ही बुद्धिमत्ता एवं चातुर्य्य का परिचायक है। जैसे श्रीहरिश्चन्द्रादि। (८६) श्रीशुकदेव के द्वारा उपसंहार वाक्य में भी लिखित है—श्रवणादि भक्ति ही कर्त्तव्य है, नानाङ्गपूर्ण शुद्धाभक्ति के मध्य में भी लीला कथा श्रवण ही परम श्रेयः साधक है। (८७-६१) श्रीसूतोपदेश के अवशेष में भी उक्त है (१२।१२) श्रीभगवत् कीर्त्तनादि के प्रति आदर करना कर्त्तव्य है—श्रीकृष्ण-स्मरण के द्वारा ही सत्त्वशुद्धि, ज्ञान, वैराग्य एवं प्रेमभक्ति का लाभ होता है। श्रीहरिभजन के द्वारा ही तपः आदि सम्पत्ति सफल होती है। (६३-६८)

श्रीमद्भागवत के सर्व इतिहास वाक्य का भी तात्पर्य्य भक्तिमात्र में ही है। निज भृत्य के प्रति यम-वाक्य में उक्त है—नामादि कीर्त्तन द्वारा श्रीहरि-भक्ति ही जीवमात्र का परम धर्म है, भक्त गुणादि श्रवण द्वारा वेदादि श्रवणफल सिद्ध होता है। सर्वदा श्रीहरिस्मृति ही परम कर्त्तव्य है—वेदार्पण मन्त्र में भी श्री-जनार्द्दन प्रीति ही उद्दिष्ट है (९५) श्रीव्रजदेवी के प्रति श्रीउद्धव वाक्य में भी उक्त है—समस्त वर्णाश्रमाचार विहित कर्म का उद्देश्य, श्रीकृष्णभक्ति ही है। (९६) श्रीभगवान् के प्रति ब्रह्मा के वाक्य में उक्त है—ज्ञान, भक्ति के ही अन्तर्गत है। श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय में शुद्धाभक्ति उपदिष्टा है। (९७)

श्रीदाम विप्र वाक्य में भी प्रकाशित है—अन्यान्य पुरुषार्थ साधन भी भक्ति मूलक हैं, भक्ति ही समस्त सिद्धि का जीवन है, किन्तु वह सब सिद्धि के बिना भी भक्ति का साधकत्व है। समस्त शास्त्रों में भक्ति का अभिधेयत्व वर्णित है। अज्ञव्यक्तिवृन्द भी काम्य कर्मादि के अङ्ग रूप में श्रीविष्णु की उपासना करते हैं। देवतावृन्द के पारस्परिक वाक्य में उक्त है—भक्ति ही उपासक को स्वकामनादानानन्तर परमफल 'प्रेम' प्रदान करती है। व्यतिरेक मुख से (९९) प्रतिपादित है—काम्यकर्मानादर के द्वारा भक्ति का विश्वसनीयत्व एवं नित्यसुख रूपत्व, स्वल्पायास एवं वित्तादि द्वारा साध्या भक्ति परम फलदा (१००) भक्ति के विना अपर कुछ श्रीहरि सन्तोषकारक नहीं है, श्रीहरि में अर्पित प्राण श्वपच भी भक्तिहीन द्वादशगुण युक्त विप्र की अपेक्षा श्रेष्ठ है, कारण, भक्तिहीन व्यक्ति के उक्त समस्त गुण गर्वित करते हैं, चित्तशुद्धि नहीं करते हैं। (१०२) श्रीभगवदर्पित कर्म को अनादर के द्वारा जैसे चोलदेशराज एवं शुद्ध भक्त के उपाख्यान में प्रकाश है—श्रीगीता के द्वादश अध्याय में, भक्ति की असामर्थ्य में ही कर्मार्पण विहित है (१०३) योग के अनादर द्वारा, भक्तिमार्ग में श्रम नहीं होता है, अथच तद्वशीकारता रूप अपूर्व फल होता है। (१०५) भक्ति के बिना ज्ञानोत्पन्न होता ही नहीं। (१०६) स्वतन्त्र अन्याश्रय को अनादर करके भी भक्ति प्रतिपादित है। यथा—देवगण, श्रीआदिपुरुष का ब्रह्मा एवं शिव को भी वैष्णव मानकर भजन करें। सत्‌वैष्णव के पक्ष में विष्णु को अन्य देवता के समकक्ष रूप देखने से भक्ति का लाभ नहीं होता है, प्रत्युत—प्रत्यवाय होता है। अभेद दृष्टि (देवत्रय में) वचन-शान्त भक्त पर एवं ज्ञानीभक्त पर है। श्रीशिव एवं मार्कण्डेय प्रभृति भी शुद्ध वैष्णवों का भजन करते हैं। स्वयं श्रीशिव भी श्रीहरि का ईश्वरत्व को कहे हैं—अतएव वैष्णव बुद्धि से ही श्रीशिव का भजन युक्तियुक्त है, शुद्ध वैष्णववृन्द श्रीशिव को वैष्णव मानते हैं, कतिपय व्यक्ति, भगवद्-अधिष्ठान मानते हैं, श्रीशिव का भजन स्वतन्त्र ईश्वर बुद्धि से करने पर भृगुशाप लगता है। अन्यान्य देव वृन्द को भगवान् की विभूति जानना चाहिये। देवतान्तर की स्वतन्त्र उपासना के द्वारा श्रीहरि को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अन्य देवता की अवज्ञा, अनादर, निन्दा करना अत्यन्त दोषावह है, कारण, उक्ताचरण से पूर्वाचरित धर्म भी विनष्ट होता है। श्रीशिव निन्दक एकान्ती वैष्णव का भी नरक गमन होता है, जैसे चित्रकेतु।

श्रीकपिलदेव के मत में—जब साधारण प्राणी की अवज्ञा निषिद्ध है, तब श्रीशिवनिन्दा का प्रसङ्ग तो हो ही नहीं सकता है। कनिष्ठ भागवत ही श्रीविग्रहादि में शिलादि बुद्धि करके नारकी होता है। जो व्यक्ति, पिता जिस प्रकार निजपुत्र के प्रति प्रीतिशील होता है,उस प्रकार प्राणीमात्र के प्रति प्रीतिशील होता है, उसके प्रति श्रीभगवान् आशु सन्तुष्ट होते हैं। भक्ति में अजात श्रद्ध व्यक्ति के पक्ष में ही अधिकारोचित कर्मानुष्ठान के सहित अर्च्चन करना आवश्यक है। उससे ज्ञान लाभ होता है। किन्तु जात श्रद्ध के पक्ष में यावज्जीवन शुद्धार्च्चन करना ही कर्त्तव्य है। भूत दया के बिना अर्चन सिद्ध नहीं होता है। यथायोग्य यथा शक्ति दान के द्वारा उसका अभाव होने पर सम्मान प्रदान द्वारा दया करना कर्त्तव्य है। समस्त जीवों के मध्य में एकान्ती भक्त ही श्रेष्ठ है। भक्त के प्रति विशेष आदर एवं अन्य के प्रति यथाशक्ति आदर करना कर्त्तव्य है।

प्रथम उपासक के पक्ष में सर्व भूतादर विहित है। सश्रद्ध साधक के पक्ष में वह स्वाभाविक है। जात रति के पक्ष में सर्वभूत में अहिंसा एवं उपरति स्वीय स्वभाव है। परमसिद्ध के पक्ष में सर्वभूत में प्रेम स्वाभाविक है। अन्यत्र रागद्वेष आशु परित्याग हेतु श्रीभगवत् सम्बन्ध में अन्य देवता एवं भूतादर करना कर्त्तव्य है। केवल भूतादर अनर्थ हेतु है- जैसे भरत का। श्रीभगवदर्चन हेतु पत्र पुष्प चयनरूप किञ्चित् हिंसा भी विहित है।

(१०७) पण्डित व्यक्ति, कृतज्ञ, सुहृद् एवं आत्मद हरि व्यतीत अन्य की शरण ग्रहण नहीं करते हैं। (१०८) श्रीहरि के अभक्त के प्रति अनादर करने से (१०९) श्रीहरि के निष्किञ्चन भक्त को देवतागण गुणों के द्वारा आश्रय करते हैं। (११०) कर्मादि मार्गसिद्ध मुनिगण आदरणीय नहीं हैं, भागवत धर्म के द्वादश विध महाजन (१११) श्रीभगवद् भक्ति का ही सर्वोद्ध्र्व अभिधेयत्व है। श्रवण कीर्त्तनादि भक्ति, सर्व वर्ण एवं सर्वाश्रमी के पक्ष में नित्य स्वधर्म है। श्रीहरि की अवज्ञा करने से जीवन्मुक्त व्यक्ति का भी पतन होता है।

(११२-१३) वर्त्तमान शरीर में एवं देहान्तर में भक्ति नित्या है। तात्पर्य्य निर्णायक षड् विध लिंग द्वारा भी भक्ति का ही अभिधेयत्व स्थापित होता है। (११५) चतुःश्लोकी में भक्ति का ही अभिधेयत्व कथित है। भक्ति की सवशास्त्रादि में सार्वत्रिकता है। सर्व शास्त्र में, सर्व कर्त्तृत्व में, सर्व देश में, सर्व करण में, सर्व द्रव्य में, सर्व कार्य्य में, सर्व फल में, सर्व कारक में भक्ति की अबाध स्थिति है। भक्ति का सदातनत्व स्वर्गादि में, सर्वयुग में, सर्बावस्था में है। रहस्याङ्ग भक्ति होने के कारण ही ज्ञानरूप अर्थान्तर के द्वारा ही वह वर्णित है।

(११५-२७) ब्रह्मा नारद को एवं नारद व्यास को हरिभक्ति संकल्प करके ही श्रीमद्भागवत लिखने के निमित्त कहे थे। श्रीभगवान् भी कहे हैं—उत्तम हरिभक्ति ही 'लाभ' शब्द से अभिहित है।

(११६-२०) भागवद् धर्म ही परमहंसवृन्द के एवं श्रीभगवान् का प्रिय है। तदुपदेष्टा ही सर्वोत्कृष्ट है। (१२१) शुद्धा भक्ति में लोकसमूह को प्रवृत्त कराने के निमित्त ही कर्म्मादि मिश्र भक्ति उपदिष्ट है। अतएव भक्त के पक्ष में एकमात्र भक्ति ही कर्त्तव्य है। (१२२)भक्तिका ही परमधर्मत्व, सर्वकाम प्रदत्व,सर्वान्तराय निवारकत्व है। भक्ति मार्ग में ज्ञान मार्ग के समान असहायता निमित्त भय नहीं है। कर्म मार्गवत् मत्सरादि युक्त से भय नहीं है। भक्त, साधनमार्ग से भ्रष्ट नहीं होता है। यथा—वृत्र, गजेन्द्र, भरतादि।

(१२३-२४) भक्ति का दुष्ट जीवादिकृत भयनिवारकत्व (१२५) भक्ति का पापघ्नत्व, अप्रारब्ध पाप हारित्व है। (१२६) केवलाभक्ति ही सूर्य्य निहारवत् सर्व पाप को विदूरित करती है। (१२७) भक्ति ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। यथा—वृत्रासुर बधजन्य पाप से इन्द्र की निष्कृति। महदपराध भोग के द्वारा किंवा महत् सन्तोष के द्वारा नाश होता है। (१२८) प्रारब्ध पाप हारित्व, जातिदोष, एवं व्याधिप्रभृति विनाशकत्व, (१२९) भक्ति का दुर्वासना हारित्व। (१३०) भक्ति का अविद्याहारित्व, (१३१) भक्ति का सर्वप्रीणन हेतुत्व, हरिभक्त को स्थावर जङ्गमादि प्रीति करते हैं।

(१३२) भक्ति का ज्ञानवैराग्यादि सर्व सद्गुण हेतुत्व, भक्ति का स्वर्गापवर्ग भगवद्धामादि में सर्वानन्द हेतुत्व, भक्ति का स्वतः परमसुखदत्व के कारण, अन्य साधन एवं साध्य वस्तु विषय में हेयत्वकारिता भक्ति ही है। (१३३-३४) भक्ति का निर्गुणत्व, भक्ति ही निर्गुण है, अपित कर्म्मादि समस्त ही सगुण हैं। (१३५) भक्ति में सत्वगुण की अपेक्षा नहीं है। यथा—चित्रकेतु, महत्सङ्ग ही परमनिर्गुण भगवज्ज्ञान वा भक्ति का कारण है। महत्–निर्गुण हैं, उनका सङ्ग भी निर्गुण है। महत सेवैकनिदानत्व हेतु भक्ति भी निर्गुण है, ब्रह्मज्ञान द्विविध हैं, आनुषङ्गिक रूप से भक्त का एवं स्वतन्त्र रूप से ब्रह्मोपासक का ज्ञानोदय होता है। शान्त भक्त का ब्रह्म, श्रीभगवान् की पराभक्ति का परिकर होता है। जैसे, श्रीगीता के १८।५४

में उक्त है, एवं श्रीभागवतोक्त ब्रह्मज्ञानी का जीवाभेद में ब्रह्मज्ञान होता है। साधक की मति के द्वारा कल्पितत्व हेतु प्रसादाभासोत्थ ब्रह्मज्ञान भी सगुण है। ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति, परमात्म चैतन्य की ही हैं, अतएव निर्गुणा ज्ञान क्रियात्मिका श्रीहरिभक्ति भी निर्गुण है। श्रीकपिलदेवोक्त भक्ति की सगुणावस्था साधक की अन्तःकरणानुगारूपा है। श्रीभगवत् निकेतन में वास निर्गुण है।

(१३६) श्रीभगवदाश्रयकारक निर्गुण है, कारण, क्रिया में ही उसका तात्पर्य्य है। तदाश्रय द्रव्य में नहीं है। (१३७) भगवत् सेवा श्रद्धा निर्गुण है, (१३८) भगवत्धर्म निर्गुण है, (१३९) भक्ति का स्वयं प्रकाशत्व है (१४०) नित्य परमसुख रूपत्व, साधक दशा में एवं सिद्ध दशा में भगवद्विषयक रति प्रदत्व भक्ति का है।

(१४१) भक्ति योगाख्य रति ही पुरुषार्थ है, इस विषय में श्रद्धा का शैथिल्य होने पर भी भगवान् भक्ति प्रदान ही करते हैं, मुक्तिदान नहीं करते। कारण, केवल भक्ति के द्वारा ही भगवान् तुष्ट होते हैं। (१४२) वह भक्ति श्रीभगवान् की ही ह्लादिनी शक्ति की परम वृत्ति है। अतएव प्रीतिस्वरूप श्रीभगवान् भक्ति द्वारा ही प्रीणनीय हैं। (१४३) आत्माराम, पूर्णकाम, श्रीभगवान् क्षुद्र वस्तु के द्वारा भी परितुष्ट होते हैं। सहज भगवत् प्रीति प्रार्थना करके जो लोक भगवत् सेवा करता है, उसको श्रीकृष्ण कल्पतरुवत् निज प्रीति प्रदान करते हैं। (१४४) कृपा प्रावल्य हेतु श्रीभगवान् निजभक्ति शक्ति को जीव में प्रकाशित करके स्वदत्त भक्ति के द्वारा ही स्वयं जीव का बन्धु होते हैं। जीव उपकारकता, आभासमात्र ही है। (१४५) श्रीभगवदनुभव विषय में भक्ति का अनन्य हेतुत्व है। (१४६) श्रीभगवत् प्रापकत्व, (१४७) मन का अगोचर फल दातृत्व भी भक्ति का है। यथा—श्रीध्रुव। श्रीभगवद् वशीकारित्व—श्रीमद्भागवत के ११।१४ अध्यायस्थ साध्य एवं साधन भक्ति का समाधान। साधनावस्था में श्रवण कीर्त्तनकारी भक्त का हृदय, अनर्थ निवृत्ति के द्वारा क्रमशः जितना परिमार्जित होता है, उतना ही वह श्रीकृष्णमाधुर्य्यानुभव करता है, विषय द्वारा बाध्यमान होने पर भी वह अभिभूत नहीं होता है। साध्य भक्ति का संस्कार हारित्वहेतु उससे विषयसमूह बाध्यमान होते हैं। (१४८) साक्षात् भक्ति का तो परम धर्मत्व है ही, भगवदर्पित अलौकिक कर्म का भी परम धर्मत्व है। हरिभक्ति व्यतीत अपर के ऊपर ही यमराज का शासन होता है।

सकृत् भजन के द्वारा ही आयु सफल होती है, भक्ति, सर्व विध कर्मध्वंस पूर्वक – अनायास परम-गति प्राप्ति का कारण होती है, श्रीकृष्ण मन्त्र दीक्षा ग्रहणमात्र से ही लोक जब मुक्त होता है तब जो लोक भक्तिपूर्वक सर्वदा सेवा करता है, वह सुतरां ही कृतकृत्य होगा। (१५०) 'मैं शरणागत हूँ' कहने से ही श्रीहरि जीव को अभय प्रदान करते हैं। (१५१) गर्भस्थ किसी जीव भगवान् की स्तुति करता है, किसी जीव नहीं भी करता है। श्रीहरिभक्त, सर्वावस्था में ही भक्ति समर्थ है, श्रीविष्णुभक्त-अतीत एवं भविष्यत के शतकुल को उद्धार करता है। (१५२) भक्त्याभास का भी सर्व पाप क्षयपूर्वक विष्णुपद प्रापकत्व है—यथा-दण्डहस्त से नृत्यकारी उन्मत्त को ध्वजारोहण फल लाभ, व्याधहत एवं कुक्कुर मुखानीत पक्षी को परिक्रमा का फल लाभ, पूर्वजन्म में प्रह्लाद के द्वारा अज्ञानतः अनुष्ठित श्रीनृसिंह चतुर्दशी व्रत का फल लाभ

(१५३) अपराध रूप में दृश्यमान भक्त्याभास का भी महा प्रभाव है। यथा—श्रीविष्णुमन्त्र रक्षित विप्र के स्पर्श से राक्षस की निर्वेद प्राप्ति, दीपवर्त्तिका चौर मुषिक को राज्ञीत्व एवं परमपद प्राप्ति, कृत जन्माष्टमीव्रतरत दासी के साहचर्य्य से एकव्यक्ति की तद्व्रत फलप्राप्ति, दुष्टकार्य्यार्थ मन्दिर लेपन द्वारा उत्तम गति प्राप्ति,—ब्रह्मज्ञान के द्वारा भी ईदृश फललाभ की सम्भावना नहीं है। श्रीभगवद्वशीकारिता के सम्बन्ध में भी भक्ति ही कारण है। भक्ति के माहात्म्यवृन्द केवल प्रशंसावाद ही नहीं है। जैसे—अजामिलादि में प्रसिद्ध है। केवल श्रीहरिनाम में ही नहीं अपितु—भक्तचङ्गमात्र में अर्थवाद की कल्पना करने से जो दोष होता है। भजन में क्रमशः उन्नति न होने पर नामार्थवाद कल्पना एवं वैष्णव अनादरादि दुरन्त अपराध

को प्रतिबन्ध कारण रूप से जानना होगा। भक्ति में अर्थवाद कल्पना करने से ही नृग राजा का दान कर्म्माग्रह हुआ था। एवं यमलोक गमन भी हुआ था। इस प्रकार अपराध से भक्तिस्तम्भ भी होता है।

शरीर, धन, जनता एवं लोभहेतु जो पाषण्डी श्रीगुरु अवज्ञादि दशापराध करता है, उसके सम्बन्ध में नाम आशु फल दान नहीं करता है। वैष्णव अपराधी के प्रति श्रीविष्णु सन्तुष्ट नहीं होते हैं। अविश्रान्त श्रीहरिनाम कीर्त्तन के द्वारा ही नामापराध विनष्ट होता है। नामापराध नाश के सहित अपराधावलम्बन पाप वासना भी विनष्ट होती है। नामावृत्ति, सिद्धि के पक्ष में प्रतिपद में सुखोदय हेतु होती है। असिद्ध के पक्ष में फल प्राप्ति पर्य्यन्त होती है। फल प्राप्ति में विलम्ब होने पर जानना चाहिये कि—अपराध विद्यमान है। महत्सङ्गादि लक्षण भक्ति के द्वारा भी दुर्निवार्य्य कौटिलादि—प्राचीन अपराध के ही चिह्न हैं।

(१) कौटिल्य—गुरु-कृष्ण—वैष्णव के प्रति भीतर में अनादर—एवं बाहर पूजादि—यथा-दुर्योधन प्रभृति का आचरण, (१५४) भक्तवृन्द समस्त अज्ञ को कृपा करते हैं। किन्तु कुटिल विज्ञ को कृपा नहीं करते हैं। ज्ञानलव दुर्विदग्धलोक - अचिकित्स्य होने के कारण उपेक्षणीय है। (१५५) (२) अश्रद्धा— भक्ति की महिमा को जानकर भी विपरीत भावना के द्वारा विश्वास का अभावरूप है। यथा—दुर्योधन के विश्व-रूप दर्शन होने पर भी वह विपरीत भावना ग्रस्त था। भगवन्महिमा प्रकाशेच्छु भक्त की विपद् से रक्षा रूप आनुषङ्गिक भक्ति का फल भी कथित है, किन्तु यह निज रक्षा वा महिमा प्रकाश निबन्ध नहीं है। जिस प्रकार-प्रह्लाद-शौनक-परीक्षत् में दृष्ट होता है। इनमें उसकी इच्छा भी नहीं थी।

(१५६) महानुभाव लक्षण आधुनिक भक्त में भी महिमा दृष्ट होने पर भी अविश्वास अकर्त्तव्य है। विशेष उपासना के द्वारा भी उस प्रकार आनुषङ्गिक फलोदय होता है। यथा—ध्रुव। (१५७) (३) भगवन्निष्ठा च्यावक वस्त्वन्तराभि निवेश—यथा-भरत का। इसमें प्राचीन अपराधात्मक चार कर्म्म ही कारण है। (१५८) कतिपय व्यक्ति मानते हैं कि—तादृश भक्त में साधारण प्रारब्ध का ही प्रावल्य—श्रीभगवान् स्वय ही उस भक्त की उत्कण्ठावृद्धि के निमित्त करते हैं—यथा-भरत एवं नारद में हुआ। अपराध निबन्धन उस प्रकार अभिनिवेश होता है, जिस प्रकार-गजेन्द्र में हुआ। (८।४।११- २) (४) भक्ति शैथिल्य— जिससे आध्यात्मिकादि सुखदुःख निष्ठा ही प्रकाशित होती हैं। भक्ति निष्ठाशील व्यक्ति के पक्ष में उस प्रकार सुख अनादृत होता है। उपासना वृद्धिहेतु देह रक्षा के निमित्त सत्साधक की इच्छा होती है। भक्ति के निकट अपराधावलम्बन से भक्ति का शैथिल्य होता है, मध्य मध्य में रुच्यमान भक्ति के द्वारा भी वह विदूरित नहीं होता है। निरपराध मूढ़ असमर्थ लोक की सिद्धि स्वल्प से ही होती है। तत्प्रति भगवत्कृपा अत्यधिक होती है। किन्तु अत्यन्त दौरात्म्य हेतु ही विवेकी का अपराध होता है। विद्वान् एवं समर्थ शतधनु का अपराध हेतु पतन, एवं मूढ़ मूषिकादि का अपराध विद्यमान होने पर भी सिद्धि युक्तियुक्त ही है। दौरात्म्य विद्यमान न होने से अपराध को अतिक्रम करके भक्ति का प्रभाव उदित होता है।

(५) स्व भक्त्यादि कृताभिमानत्व— अपराध हेतु ही होता है। उससे वैष्णवावमाननादि लक्षण अन्य अपराध उत्पन्न होता है। यथा-दक्षकृतापराध। प्राचीन एवं अर्वाचीन अपराध के अभाव से ही सकृत भजन से फलोदय होता है। पूर्व वा इहजन्म में श्रीभगवदाराधनादि सिद्ध व्यक्ति का ही मरण समय में एक बार भी भगवन्नाम ग्रहणादि होते हैं। एवं उससे भगवत् साक्षात्कार चिन्तित होकर श्रीभगवत् प्राप्ति होती है। जिस प्रकार गीता में उक्त है—अपराधाभाव हेतु पुनर्वार कर्मक्षय निमित्त जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता है। जैसे अजामिल का हुआ। किन्तु यमदूत के पक्ष में नामादि कीर्त्तन श्रवण करके भी वैसा नहीं हुआ।

(१६०-६२) श्री भरत एवं श्रीअजामिल के हृदय में सर्वदा श्रीभगवदाविर्भाव था, तज्जन्य मृत्यु समय में सकृत् भजन के द्वारा भगवत् प्राप्ति हुई। (१६१) अन्त में श्रीहरि स्मृति ही परम लाभ है। (१६२)

अतिशय भगवत् कृपा के द्वारा ही मरण समय में दैन्योदय होता है, (१६३) अधिकारी विशेष में ही भगवत् कृपा का फलोदय दृष्ट होता है। जात रुचि में अन्य स्पृहात्याग होता है, यथा उद्धव के द्वारा क्रोध, लोभ, मात्सर्य्य एवं अशुभा भक्ति का परित्याग। (१६४) जात प्रेम में क्षुधा तृष्णा द्वारा अबाधत्व-यथा-परीक्षित् का हुआ।

(१६५) अनन्या भक्ति ही अनन्यत्व है। भक्ति का महादुर्ल्लभत्व एवं दुर्बोधत्व है, अन्य कामना द्वारा भक्ति का अभिधेयत्व नहीं होता है। अकिञ्चनत्व एवं अकामत्व—तन्मात्र कामना के द्वारा ही सिद्ध होता है। एकान्तित्व का दृष्टान्त—श्रीप्रह्लादादि का भगवान् भिन्न साध्य साधन विवर्जितत्व।

(१६६) राजा एवं सेवक के समान प्रभु एवं भृत्य उभय की ही कामना नहीं है। (१६७) भगवत् सुख में एवं मान में भक्त का सुख एवं मान। (१६८) सकाम भक्ति—स्वार्थ साधन तात्पर्य्य द्वारा भक्तानुकरणमात्र ही है। सकामत्व द्विविध है—ऐहिक एवं पारलौकिक। प्रह्लाद का मुख्य एकान्तित्व, एवं मुमुक्षु पृषध का गौण एकान्तित्व- एकान्त भक्त अम्बरीष के यज्ञादि अनुष्ठान—लोक संग्रहार्थ। भक्ति के द्वारा जीविका प्रतिष्ठादि का न करना ही ऐहिक निष्कामत्व है। (१६९) नवधा निष्काम भक्ति का ही सर्वशास्त्र सारत्व है। समस्त भक्त्यङ्ग के अन्तर्भुक्त नव प्रकार भक्ति के एक अङ्ग द्वारा ही साध्य प्राप्ति होती है। तथापि कहीं पर अन्याङ्ग मिश्रण भिन्न रुचिवशतः ही श्रद्धा होती है।

(१७०) अकिञ्चन भक्त्यधिकारि विशेष निर्णयः। परतत्त्व साम्मुख्य त्रिधा—ज्ञान, भक्ति एवं कर्मार्पण, (१) निर्विशेष परतत्त्व साम्मुख्य ज्ञान, (२) सविशेष परतत्त्व साम्मुख्य भक्ति, (३) तदुभय का द्वार स्वरूप कर्मार्पण, (१७१) निर्विण्ण का ज्ञान में, सकामी का कर्म्म में, एवं श्रद्धालु का भक्ति में अधिकार। (१७२) किसी प्रकार परम स्वतन्त्र भगवत् भक्त कृपा द्वारा सञ्जात श्रद्धामात्र ही भक्त्यधिकार हेतु है। यही केवलमात्र परम मङ्गलकर है। इस प्रकार विश्वास का श्रद्धा है। श्रद्धा भिन्न अनन्य भक्ति प्रवर्त्तित नहीं होती है। कदाचित् किञ्चित् प्रवृत्ता होने पर भी नष्ट हो जाती है। अतएव निर्विण्ण, नातिसक्त होने के अनन्तर भी भगवत् कथादि में श्रद्धा उत्पन्न होने से ही कर्म परित्याग विहित है। हेला से अर्थात् श्रद्धा के बिना भी भक्तिमात्र सिद्ध होती है। यथा—अजामिल में। दाहादि कर्म में अग्न्यादिवत् फलोदय विषय में भक्ति को विधि की अपेक्षा नहीं है। दौरात्म्य के अभाव से अबुद्धि पूर्वक कृता अपराधरूपा हेला भी भक्ति द्वारा बाधिता होती है, किन्तु दौरात्म्य विद्यमान होने पर ज्ञानलव दुर्विदग्धादि में आर्द्रेन्धन में वह्नि शक्तिवत् भक्ति के द्वारा भी हेला बाधिता नहीं होती है। यथा वेण में दृष्ट है। श्रद्धा एवं भक्ति शब्द का अर्थ यहाँ आदर भाव है। श्रद्धा भक्ति का अङ्ग नहीं है, अनन्या भक्त्यधिकारी का विशेषण मात्र है। परपत्नी, परद्रव्य एवं परहिंसा में जिसकी मति नहीं है, उसके प्रति श्रीभगवान् तुष्ट होते हैं।

(१७२) लब्धभक्ति व्यक्ति की पाप में स्वाभाविक अरुचि है, भक्ति के बल से पाप में प्रवृत्ति होने से अपराध ही होता है, श्रीगीतोक्त—"अपिचेत् सुदुराचारः" श्लोक-अनन्य भक्त का अनादर दोषपर है, दुराचारता विधान पर नहीं है।

(१७३) जात निर्वेद वा जात श्रद्ध व्यक्ति के पक्ष में नित्य नैमित्तिक कर्म करने से ही आज्ञाभङ्ग दोष होता है। (१७४) शरणापन्न भक्त का तदनुस्मरण के द्वारा ही विकर्म्म का प्रायश्चित होता है। अनन्य भक्त का श्रीभगवान् भिन्न अन्य देवता में तद्रूप भक्ति नहीं होती है। जात श्रद्ध व्यक्ति का शरणापत्ति ही चिह्न है, कारण, भगवच्छरण को ही अभय कहते हैं। देवादि तर्पण भी पृथक् आराधन रूप से विहित नहीं है। श्रीभगवदाराधना से ही मूल सेवकवत् सब तृप्त होते हैं, कर्मत्यागी की भक्ति, विघ्न द्वारा स्थगित होने पर भी कर्मत्यागजन्य अनुताप करना निषिद्ध है। यथा गीता (१८।६६) एवं भा (११।५।१७) में उक्त है—

भक्त्यारम्भ में ही स्वरूपतः कर्म्म त्याग विहित है। व्यवहारिक कार्पण्याद्यभाव भी श्रद्धा का चिह्न है। श्रद्धावान् व्यक्ति का भगवत् सम्बन्धी किसी भी वस्तु में अविश्वास नहीं होता है। श्रीहरिस्मरण द्वारा बाह्य एवं अभ्यन्तर शुद्ध होने पर भी स्नानादि आचरण—सत्परम्पराचार गौरव हेतु ही होता है। उस प्रकार न करने से अपराध होता है, कारण, कदर्य वृत्ति निरोध हेतु महत्वृन्द मर्यादा स्थापन किये हैं, श्रद्धा उत्पन्न होने से ही सिद्ध असिद्ध-उभय अवस्था में ही स्वर्ण सिद्धि लिप्सु व्यक्ति के समान सदा भक्त्यनुवृत्ति चेष्टा ही विहित है। सिद्ध की श्रीहरि स्फूर्त्ति हेतु दम्भ प्रतिष्ठामय चेष्टा का लेशमात्र भी नहीं होता है, अतः ज्ञानकृत महदपराधादि नहीं होता है। अतएव श्रीमहादेव के निकट चित्रकेतु का जो अपराध हुआ था वह भागवत तत्त्व में अज्ञान के कारण हुआ था। श्रद्धावान् भक्त का प्रारब्ध के द्वारा विषय सम्बन्धाभास उपस्थित होने से उससे दैन्यात्मिका भक्ति उच्छलिता होती है। अनन्य भक्त रूप से प्रतीत व्यक्ति की श्रद्धा लोक परम्परा प्राप्ता है, किन्तु शास्त्रावधारणजाता नहीं हैं। जिसके उदय से विष्णुतोषण शास्त्र का विरोध होता है। अतः शास्त्रीय श्रद्धालु में सुदुराचारत्व का योग होना असम्भव है। सुदुराचारत्व दोष—लोक परम्पराप्राप्त श्रद्धा में ही सम्भव है। लोक परम्पराप्राप्ता श्रद्धा भी—सात्विकी, राजसिकी, तामसी भेद से त्रिविध हैं।

गीता १७।१ में उक्त है, उक्त श्रद्धा की पूर्णावस्था में सत्यासत्य विचारानन्तर असत्य त्याग होता है, उक्त अवस्थाप्राप्त सत् के प्रति ही 'यदृच्छया मत्कथादौ' इत्यादि श्लोक का विधान है, 'न बुद्धिभेदं जनयेद्' यह कथन—लोक परम्पराप्राप्त श्रद्धालु के सम्बन्ध में है, स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्' श्लोक—शास्त्रार्थ वधारण जात श्रद्धालु के सम्बन्ध में है। अज्ञजन में उक्त श्रद्धा असम्भव होने पर भी प्राचीन संस्कारानन्तर उपदेश कर्त्तव्य है, अश्रद्धान, विमुख एवं अशुश्रूषु व्यक्ति को उपदेश प्रदान करने से अपराध होता है।

(१७५) रुच्यादि श्रीगुर्व्वाश्रयान्त उपासना का पूर्वाङ्गरूप साम्मुख्यभेद है, कर्म—भगवत् साम्मुख्य द्वारभूत है, अफलकामी वर्णाश्रम कर्मकारी अनघ शुचि लोक ज्ञानी के सङ्ग में ज्ञानी किंवा भक्तसङ्ग में भक्त होता है। (१७६) ज्ञान एवं भक्ति-साक्षात् साम्मुख्य है ज्ञान, निर्विशेष साम्मुख्य, भक्ति—सविशेष साम्मुख्य है। वह द्विविध, भगवन्निष्ठत्व, परमात्मनिष्ठत्व,— गीता एवं भागवत में उक्त है। भक्ति का आनुषङ्गिक सर्वफलत्व हेतु ज्ञान भी न्यक् कृत होता है। एवं विष्णु की उपासना, परमात्मा की उपासना, अहं ग्रहोपासना, सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्यादि न्यक्कृत होते हैं। निष्किञ्चना भक्ति ही सर्वोद्ध्वर्व है।

(१७७) तन्माधुर्य्यानुभव से भक्त का विधिनिषेध कृत दोष नहीं होता है। (१७८) अंशजीव, भगवदाश्रयक तदेक जीवन है, अतएव अकिञ्चना भक्ति ही उसका स्वभावतः उचित है। प्रणव ही वैष्णवों का महावाक्य है। (१७९) सत्सङ्ग से ही अकिञ्चना साक्षात् भक्तिरूप साम्मुख्य होता है। (१८०) श्री-भगवदनुग्रह से जीव का संसार बन्धनकाल का शेष काल उपस्थित होने पर सत्सङ्ग होता है, एवं सत्सङ्ग-मात्र से ही भगवान् में भक्ति होती है, जैसे पिङ्गला को हुई। साक्षात् सत्सङ्ग उपलब्ध न होने पर भी आधुनिक प्राक्तन वा पारस्पारक सत्सङ्ग अनुमेय है। निरपराध व्यक्ति का ही सत्सङ्ग मात्र के द्वारा भगवत् साम्मुख्य वा सम्मति होती है, किन्तु अपराधी के प्रति सत् की विशेष कृपादृष्टि के सहित सत्सङ्ग होने से ही वह साम्मुख्य का कारण होता है। जिस प्रकार श्रीनारद के सहित नल कुवर मणिग्रीव का हुआ था। किन्तु अन्य देवता का नहीं हुई। अपराध की विद्यमानता में भी जिसके प्रति महत् की कृपा स्वतन्त्र रूप से होती है, उसकी ही भगवन्मति होती है। जिस प्रकार उपरिचर वसु की विशेष कृपा के द्वारा तद्विद्वेषी दैत्यगण भी दैत्य हुए थे। प्रह्लाद की विशेष कृपा के द्वारा तच्चेता रूढ़ दैत्य बालकवृन्द की मुक्ति हुई थी।

अनादिसिद्ध तदज्ञानमय तद्वैमुख्यवान् जीव का सत्सङ्गभिन्न अपर किसी भी प्रकार से तत्साम्मुख्य असम्भव होने के कारण सत्सङ्ग ही भगवद्भक्ति का निदान सिद्ध होता है। तद्विमुख जीव में स्वतन्त्र भाव से प्रवर्त्तित न होने के कारण तत्साम्मुख्य के प्रति भगवत् कृपा भी गौण कारण है। तेजोमाली के सहित तिमिर योगवत् सदा परमानन्दैक रस भगवच्चित्त में तमोमय जीवदुःख स्पर्श होना असम्भव हेतु उस प्रकार कृपा का उद्भव होना असम्भव है। लब्ध जागरण के दुःख स्वप्नवत् साधुचित्त में सांसारिक के प्रति कृपोदय होता है। जिस प्रकार नलकूबर के प्रति श्रीनारद की कृपा हुई। शरणागत की दैन्यात्मिका भक्ति के सम्बन्ध में ही भगवत् कृपा होती है। जिस प्रकार गजेन्द्र प्रभृति के प्रति हुई है। अतएव सत्सङ्ग वाहना वा सत्कृपा वाहना होकर ही भगवत्कृपा अन्य जीव में संक्रमिता होती है—स्वतन्त्र रूप से प्रवर्त्तिता नहीं होती है—भगवदनुग्रह सत के आकार से ही जगत् में विचरण करता है।

(१८१) सतों की स्वैरचारिता ही सत्सङ्ग हेतु है, अपर हेतु नहीं है। (१८२) सत् में परमेश्वर प्रयोक्तृत्व भी सत् की इच्छा के अनुसार ही होती है — (१८३) स्वोपासनादि की अपेक्षा न करके ही दुरवस्था दर्शनमात्र से ही सत् की कृपा होती है—जिस प्रकार श्रीनारद की कृपा नल कूबरादि के प्रति हुई। (१८४) सत्सङ्गम ही परम संस्कार हेतु—कारण—साधुगण दर्शनमात्र से ही पवित्र करते हैं।

(१८५) महत् सेवा के बिना भगवत् प्राप्ति नहीं होती है। अतएव सत्सङ्ग ही भगवत् साम्मुख्य का द्वार है। (१८६) 'सन्त' शब्द का अर्थ भगवत् साम्मुख्य का द्वार है। वैदिकाचार पर नहीं है। जिस प्रकार सत्सङ्ग होता है, उस प्रकार ही साम्मुख्य लाभ होता है। ज्ञान-मार्ग में ब्रह्मानुभवी ही महत् है, भगवद्-भक्ति-मार्ग में लब्ध भगवत् प्रेम ही महत् है।

(१८७) सिद्ध भक्त त्रिविध हैं। (१) प्राप्त भगवत् पार्षद देह-यथा-श्रीनारदादि (२) निर्धूतकषाय-यथा-श्रीशुकदेवादि, (३) मूर्च्छित कषाय-यथा-प्राग्जन्मगत श्रीनारदादि। उक्त त्रिविध भक्त प्रेमवान् होने पर भी पूर्व पूर्व का आधिक्य है, भजनीय के अंशांशित्व भेद से एवं भक्त के दास सख्यादि भेद से प्रेम तारतम्य होता है, पुरुष प्रयोजन साक्षात्कार में भी जितने परिमाण में भगवान् का प्रियत्व धर्मानुभव होता है, उतने परिमाण में उत्कर्ष होता है। दुष्ट जिह्वा में खण्डास्वादवत् माधुर्य्यानुभव के बिना भगवत् साक्षात्कार निष्फल है, भगवत्साक्षात्कार एवं कषायादि राहित्यादि के एक एक अङ्गवैकल्य से भक्तमहत्ता की क्रमशः न्यूनता है। (१८८-२०१) भक्तश्रेष्ठता का क्रम—कायिक, वाचिक, एवं मानसिक लिङ्ग द्वारा होता है। (१८९)

(१९०) अपने के प्रति द्वेषादिकारी के द्वेषादि द्वारा अक्षुब्ध चित्तहेतु औदासीन्य यथा—प्रह्लाद का निज जनक हिरण्यकशिपु के प्रति। भगवान् वा भक्त-द्वेषकारी के प्रति चित क्षोभ होने पर भी तत्रानभि-निवेश, उत्तम भक्त का भगवद्विद्वेषी में भी निजाभीष्ट देव की स्फूर्त्ति होने के कारण तन्नमस्कारादि—जैसे उद्धवादि का दुर्योधन को नमस्कार। किञ्चिन्मानस लिङ्ग के सहित भगवद् धर्माचरण रूप कायिक लिङ्ग द्वारा कनिष्ठ भागवत द्विविध हैं,-पारम्परिक श्रद्धायुक्त प्रारब्ध भक्ति साधक गौण है, अजात प्रेम, शास्त्रीय श्रद्धायुक्त साधक मुख्य कनिष्ठ है।

(१९१-९८) उत्तम भागवत का लक्षण—(११।२-४८-५२) मूर्च्छितकषाय, इनमें संस्कार है, किन्तु उससे मोह नहीं होता है। (५३) निर्धूत कषाय—निरूढ़ प्रेमाङ्कुर है, इनमें नैष्ठिका भक्ति ध्यानाख्या ध्रुवानुस्मृति है। इनमें प्रेमाङ्कुर अनाच्छाद्य रूप में ही ज्ञात है (५४-५) साक्षात् प्रेमजन्महेतु प्रेमिका अर्च्चन मार्ग में तापादि पञ्चसंस्कारी, नवेज्या कर्म्मकारक एवं अर्थ पञ्चकविद् विप्र ही महाभागवत हैं।

(१९९) ईश्वर बुद्धि के द्वारा विधि-मार्ग के भक्त द्विविध हैं। (१) अपर मिश्र भक्ति साधक, (२००)

(२) मध्यम मिश्र साक्षात् भक्ति साधक है। (२०१) सदाचारी भगवद्भक्त के मध्य में ही सत्-सत्तर, सत्तम है, दुराचार, भगवद्भक्त के मध्य में सत्त्वान्य पर्य्याय साधुत्व है, तादृश सङ्ग की भक्त्युन्मुख होने में उपयुक्तता नहीं है। अर्च्चन मार्ग में त्रिविध भक्त हैं,-महत्, मध्यम, एवं कनिष्ठ हैं। शुद्ध दास्य सख्यादि भाव मात्र के द्वारा सर्वोत्तम अनन्य भक्त द्विविध हैं—(१) ऐश्वर्य्यनिष्ठ एवं (२) माधुर्य्यनिष्ठ।

(२०२) महत् एवं सन्मात्र द्वारा निर्दिष्ट वैष्णव साधु भिन्न भी निज गोष्ठी के मध्य में अपेक्षाकृत उत्तम वैष्णव हैं, जैसे कर्मि के मध्य में वैष्णव है। स्कन्दपुराण में इसका वर्णन है, बृहन्नारदीय में शैव के मध्य में भी भागवतोत्तम का वर्णन है। वैष्णवों के मध्य में अनेक भेद विद्यमान होने पर भी उसके प्रभाव-तारतम्य, कृपा तारतम्य, एवं भक्ति तारतम्य द्वारा सत्सङ्ग से कालशीघ्रता एवं वैशिष्ट के द्वारा भक्ति का उदय होता है।

मार्ग भेद विचार। अजात रुचि के मध्य में विचार प्रधान मार्ग वा साधन क्रम ही श्रेय है। प्रीति लक्षण भक्तिच्छुहृदय के पक्ष में रुचि प्रधान मार्ग ही श्रेयस्कर है।

(२०३-२१३) गुरुकरण-विचार- उभय मार्ग में ही प्राक्तन श्रवणगुरु ही तत्तत् भजन विधि शिक्षा-गुरु होते हैं, अनेक के मध्य में अन्यतर ही गृहीत होता है। शास्त्र में बहु मन्त्रगुरु निषिद्ध होने के कारण, मन्त्रगुरु एक व्यक्ति ही विहित है, उनकी कृपा से ही भगवद् आविर्भाव विशेष में एवं भजन विशेष में रुचि होती है। श्रवण गुरु—वेदज्ञ, अपरोक्ष भगवदनुभवी, क्रोधाद्यवशीभूत होने से आश्रयणीय है। (२०४) रुचिप्रधान साधकवृन्द के पक्ष में श्रवणादि, विचार प्रधान साधकवृन्द के पक्ष में श्रवण मनन से उत्पन्न श्रद्धा। (२०५) भजन श्रद्धा, (२०६) प्रायशः श्रवणगुरु एवं भजन शिक्षा गुरु एक ही होते हैं, (२०७) मन्त्र-गुरु एक व्यक्ति ही विहित है, एक व्यक्ति से शिक्षा दीक्षादि सम्पन्न न होने से अन्य गुरु वरण विहित है। अनेक गुरु करण से पूर्व पूर्व गुरु परित्याग सिद्ध होता है।

(२०८) श्रवणगुरु के संसर्ग से ही शास्त्रीय भजनोत्पत्ति होती है। अन्य प्रकार से नहीं होती है। शिक्षा गुरु की भी आवश्यकता—श्रीगुरु कर्त्तृक उपदिष्ट श्रीभगवद्भजन प्रकार द्वारा भगवद्धर्म ज्ञानोत्पन्न उनकी कृपा के द्वारा ही व्यसनानभिभूत होकर सत्वर मन निश्चल होता है। श्रुति का संवाद भी यह—'देवता एवं गुरु में भक्तिमान् व्यक्ति को ही महात्मावृन्द उपदेश करते हैं।' (२१०) श्रीमन्त्रगुरु की भी आवश्यकता सुतरां है। व्यवहारिक गुरु को परित्याग करके भी परमार्थ गुर्वाश्रय कर्त्तव्य है—अतएव जब तक मृत्युमोचक श्रीगुरु के चरणाश्रय नहीं करता है, तब तक ही गुर्वादि व्यवहार होता है। (२११) स्वगुरु में काम्यकर्मिवृन्द को भगवद्दृष्टि करनी चाहिये। (२१२) सुतरां पारमार्थिक पथरत व्यक्ति के पक्ष में भी श्रीगुरु में भगवद्दृष्टि करना कर्त्तव्य है। श्रीगुरु में प्राकृतदृष्टि—भगवत्तत्त्व ग्रहण में अनुपयुक्त है।

(२१३) कतिपय शुद्धभक्त, श्रीभगवान् के सहित श्रीगुरुदेव को अभेद दृष्टि से देखते हैं, एवं भगवान् के प्रियतम रूप में श्रीगुरुदेव को मानते हैं। जिस प्रकार प्रचेतागण—निज गुरु श्रीशिव को भगवद् एवं भगवत् प्रियतम रूप में माने थे। (२१४-१६) साक्षात् उपासना—लक्षण भेद—(२१४) साम्मुख्य—द्विविध, निर्विशेषमय एवं सविशेषमय, द्वितीय पुनर्द्विविध—अहंग्रहोपासना रूप एवं भक्ति रूप।

(२१५) ज्ञान का लक्षण—अभेदोपासना ही ज्ञान, उसका साधन प्रकार, महत् की विशेष कृपादृष्टि के द्वारा दिव्यदृष्टि लाभ करने से ही चिन्मात्र वस्तु में भगवत्तादिरूपा विशेषोपलब्धि अभेदोपासक की होती है। अन्यथा निर्विशेष चिन्मात्र ब्रह्मानुभव के द्वारा उसमें साधक लीन होता है। (२१६) अहं ग्रहोपासना— "तच्छक्ति विशिष्ट ईश्वर ही मैं हूँ" इस प्रकार चिन्ता करना, इसका फल—अपने में तच्चक्त्यादि का आविर्भाव। इसका अन्तिम फल सारूप्य साष्ट्यादि।

भक्ति का अर्थ है सेवा—कायिक, वाचिक, एवं मानसात्मिका त्रिविध अनुगति, अतएव भक्ति में भय द्वेषादि का एवं अहंग्रहोपासना का निराकरण होता है, तदनुगति मात्र ही श्रीभगवत्प्राप्ति का उपाय है।

(२१७) भक्ति त्रिविधा (१) आरोपसिद्धा, (२) सङ्गसिद्धा (३) स्वरूपसिद्धा, उक्त त्रिविध भक्ति भी पुनर्वार अकैतव सकैतव भेद से द्विविधा है। (१) स्वयं भक्ति न होने पर भी भगवदर्पण द्वारा भक्तित्व प्राप्ता। कर्मादि रूप. (क) लौकिक कर्मार्पण—किसी प्रकार से तद्धर्मसिद्धि हेतु काय-वाक्य-मन के द्वारा कृत लौकिक कर्म का भगवान् को अर्पण करे—दुष्कर्म्म की गति द्विविधा हैं, ज्ञानेच्छु के पक्ष में अविशेष द्वारा एवं भक्तीच्छु के पक्ष में दुष्कर्म्मादि अर्पण द्वारा, दुर्वासनोत्थ दु खदर्शन हेतु करुणामय से करुणा प्रार्थना करना। सुकर्म में वा दुष्कर्म में जो राग सामान्य है वह सर्वतोभावेन भगवद्विषयक हो, इस प्रकार प्रार्थना होती है।

कामीवृन्द के पक्ष में सर्वदा दुष्कर्म्मार्पण होता है। (१२) (ख) वैदिक कर्मार्पण— अवलेश से जिस किसी प्रकार से भगवान् में कर्म अर्पित होने पर कामना प्राप्त्यनन्तर संसार नाश होता है—यथा नाभि—ऋषभ भगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त किये थे। (२१)भगवान् में कर्मार्पण ही त्रिताप की चिकित्सा (२२०-१) संसार बन्धन हेतु कर्म श्रीभगवान् में अर्पित होने पर रोगौषधवत् संसार बन्ध नाशक होता है। (२२२) भगवदाश्रय ही वास्तविक कर्मफल-यथा—भरत—सर्व देवतांशी भगवान् वासुदेव को सर्वकर्म्मार्पण हेतु सर्व कामशून्य हुये थे। (२२३) अन्तर्य्यामी वासुदेव का प्रवर्त्तकत्व हेतु मुख्य कर्त्तृत्व, अतएव कर्मफल भी तदाश्रय अङ्गी विष्णु का है। यज्ञाङ्ग रूप में विष्णु का भजन दोषावह है। वैष्णव मार्ग में भ्रष्टत्व ही पाषण्डित्व है, सर्व वेदमार्ग ही भगवान् में पर्य्यवसित हैं। विशुद्धान्तःकरण भरत में सश्रद्ध कीर्त्तनादिलक्षणा वृद्धिशीला भक्ति का ही उदय हुआ। कर्मार्पण द्विविध—भगवत् प्रीणन रूप एवं उसमें तत्त्य गरूप।

(२२४) कर्म के कारण—त्रिविध हैं—कामना, नैष्कर्म्य, एवं भक्तिमात्र कामना प्राप्ति-यथा—अङ्गराजा की, नैष्कर्म्य यथा—निमि के प्रति, भक्ति प्राप्ति-यथा—भरत की। (२२५) (२) सङ्गसिद्धा-मिश्रा भक्ति—स्वयं भक्ति न होने पर भी भक्ति के परिकर रूप में संस्थापन द्वारा तदन्तःपाती होकर ज्ञान कर्मादि का भी भक्तित्व (क) कर्म मिश्रा- त्रिविधा (अ) सकामा, (आ) कैवल्यकामा, (इ) भक्तिमात्रकामा सकामा-प्रायशः कर्म मिश्रा ही होती है—कम-अर्थ-धर्म- भगवदर्पण द्वारा भक्ति का परिकरत्व प्राप्त कर्म को ही धर्म्म कहते हैं।

(२२६-२७) (अ) मिश्रा सकामा। यथा-श्रीकर्द्दमऋषि की (३।२१) (आ) कैवल्यकामा-कभी कर्म-ज्ञानमिश्रा, कभी तो ज्ञानमिश्रा, (२२८) (इ) भक्तिमात्रकामा-कर्म मिश्रा, (२२९) (ख) कर्मज्ञान मिश्रा, (२३०) (ग) ज्ञानमिश्रा। (२३१) (३) स्वरूपसिद्धा-अज्ञानादि द्वारा भी भक्ति का प्रादुर्भाव होने पर साक्षात् तदनुगत्यात्मा भक्तित्वाव्यभिचारिणी तदीय श्रवण कीर्त्तनादि रूपा (अ) केवल (सगुण) स्वरूपा-सिद्धा-उपासक के सङ्कल्प हेतु तत्तद्गुण द्वारा उपचारित, (क) सकामा-तामसी (भा० ३।२९।८) (२३२) (ख) सकामा राजसी (३।२९।९) (२३३) (ग) कैवल्यकामा, सात्त्विकी (३।२९।१०) (२३४) वैधी एवं राग नुगा। (आ) अकिञ्चना भक्तिमात्रकामा, निष्कामा, निर्गुणा वा केवला स्वरूपसिद्धा-श्रवणादि-मार्ग भेद, दास्यादि भावभेद, एवं सत्त्वादि गुणभेद द्वारा भक्तियोग विभक्त होता है। (२३५)वैधी (क)शास्त्रोक्त विधि द्वारा प्रवर्त्तिता-प्रवृत्ति हेतु एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञान हेतु, (ख) अर्चन व्रतादिगत श्रीभगवान् उद्धव को (भा० ११।२७।५३) में कहे थे।

(२३६) वैधी भक्तिभेद—(१) शरणापत्ति—अनन्यगतित्व—द्विविध। आश्रयान्तर का अभाव कथन के द्वारा एवं नातिप्रज्ञा द्वारा कथञ्चिदाश्रित अन्य का त्याग के द्वारा—षड् विधा शरणागति के मध्य में भी

"गोप्तृत्वे वरणम्" ही अङ्गी है, अन्यान्य अङ्गसमूह उसके परिकर हैं। सर्वाङ्ग सम्पन्ना शरणापत्ति विशिष्ट भक्त को आशु फल लाभ होता है, तद्भिन्न व्यक्ति को फल लाभ यथा सम्पत्ति एवं यथा क्रम से जानना होगा।

(२३७) शरणापत्ति के द्वारा सिद्ध होने पर भी वैशिष्ट्यलिप्सु व्यक्ति के पक्ष में सामर्थ्यानुसार गुरु-सेवा नित्य विशेष रूप से करनी चाहिये। (२) श्रवणगुरु वा मन्त्रगुरु की सेवा—अनर्थ निवृत्ति विषय में एवं श्रीभगवान् की परमसिद्धि हेतु श्रीगुरु की प्रसन्नता ही मूल कारण है।

श्रीगुरुभक्ति के द्वारा ही सर्वानर्थ नाश होता है। श्रीगुरुभक्ति—अन्य भगवद्भजन की अपेक्षा नहीं रखती है। ज्ञानप्रद गुरु की अपेक्षा अधिक सेव्य अपर नहीं है। श्रीगुरु-सेवा से अधिक धर्म भी नहीं है। यथा श्रीभगवान् श्रीदाम को कहे थे—(२३८) श्रीगुरु की आज्ञा से उनकी सेवा के अवरोध से अन्य वैष्णव-सेवा मङ्गलप्रद है। अन्यथा दोष होता है। वेदज्ञ एवं भगवदनुभवी गुरु मत्सरादिशून्य होते हैं, अतएव गुरुदेव—महाभागवत की सेवा करने में अनुमति प्रदान करते हैं, अतः शिष्य को उभय सङ्कटग्रस्त नहीं होना पड़ता है। महत्-सेवा के विरोधी गुरु को दूर से आराधना करनी चाहिये। वैष्णव विद्वेषी गुरु सर्वथा परित्याज्य है। यथोक्त लक्षण गुरु के अविद्यमान में गुरुवत् समवासन कृपालुचित्त एक महाभागवत की नित्यसेवा मणिसङ्गवत् परम मङ्गलप्रद है। अनन्तर समस्त भागवत चिह्नधारी मात्र का ही यथायोग्य सेवा विधान आवश्यक है। महाभागवत सेवा द्विविधा—(क) प्रसङ्गरूपा, (ख) परिचर्य्यरूपा (२३९) (क) प्रसङ्गरूपा—सत्प्रसङ्ग द्वारा सद्भक्ति रूप अन्तरङ्ग भक्तिनिष्ठा लाभ होती है। सत्सङ्ग जिस प्रकार भगवान् को वशीभूत करती है, योगादि अनुष्ठान उस प्रकार करने में सक्षम नहीं है। वैष्णव व्रत—अवश्य कर्त्तव्य है। वशीकरण द्विविध हैं, मुख्य-गोप्यादि में, तत्फल प्रेम है। गौण-वाणादि में, तत्फल फलोन्मुखी करणता।

(२४०) श्रीभगवान् एवं भगवदीय जन सङ्गव्यतीत अन्य साधना भाव होने पर भी पशु से आरम्भ कर आगन्तुक गोपगण पर्य्यन्त अनेक व्यक्ति श्रीभगवान् को प्राप्त किये हैं। (२४१) सत्सङ्ग मात्र द्वारा श्री-गोप्यादि का मुख्य वशीकरण-अन्यसङ्ग द्वारा अलभ्य है। केवलमात्र प्रीति हेतु व्रज में गोप्यादि के सत्सङ्ग मात्र जन्म के द्वारा ही योगादि में यत्नवान् योगि प्रभृति अलभ्य श्रीभगवान् सुलभ हैं।

(२४३) अज्ञातकृत सत्सङ्ग भी अर्थद है। (२४४) (ख) परिचर्य्यारूप—महत् प्रसङ्ग की अपेक्षा महाभागवत की परिचर्य्या के द्वारा विशिष्ट फल प्रेमोत्सव होता है, कारण, निज पूजा की अपेक्षा भक्त की पूजा भगवान् की सर्वतोभावेन अधिक प्रीतिकरी है। (२४५) व्यतिरेक मुख से—जड़ शरीरादि में आत्मादि बुद्धिकारी एवं तत्त्ववित् व्यक्ति में पूजाबुद्धिहीन व्यक्ति अति निकृष्ट है। (२४६) महाभागवत की सेवा—सिद्ध का लक्षण है, वे अतिप्रिय देह एवं देहसम्बन्धीय स्त्री पुत्रादि का स्मरणहीन होते हैं। (२४७) यथा योग्य वैष्णवाराधन करना चाहिये। श्रीविष्णु प्रसन्नता हेतु वैष्णव का परितोषण करना कर्त्तव्य है। ब्राह्मण एवं अच्युत गोत्र मात्र ही उत्तम जाति होने के कारण, पृथु महाराज के शासनाधीन वे नहीं थे।

'अवैष्णव विप्र को श्वपचवत् दर्शन न करे' यह वाक्य आसक्तिपूर्वक दर्शननिषेध पर है। श्रीयुधिष्ठिर द्रौपदी का अश्वत्थामा के प्रति उस प्रकार व्यवहार दृष्ट होता है। भक्तिवैशिष्ट्यहेतु आराधना का वैशिष्ट्य भी दृष्ट होता है। अष्टविध भक्तियुक्त म्लेच्छ भी विप्रेन्द्र, मुनिश्रेष्ठ, ज्ञानी एवं पण्डित होने के कारण, श्रीहरिवत् पूज्य हैं। वैष्णव के पक्ष में ब्राह्मण मात्र की वन्दना, श्रीभगवान् एवं उद्धवादि भक्तवत् अवश्य अवश्य कर्त्तव्य है। इस प्रकार आचरण न करने से भगवदादेश लङ्घन होता है। वैष्णव पूजक के द्वारा वैष्णवों का आचरण विचारणीय नहीं है। दुर्जातित्व एवं दुराचारित्व हेतु भगवद्भक्तजन अमाननीय नहीं है। सुतरां निज अपमानकारी जन को भी अपमान करना कर्त्तव्य नहीं है। श्रवणादि के पूर्व में ही महाजन

वृन्द की सेवा करनी चाहिये। अग्नि सेवावत् साधुसेवा के द्वारा कर्म्मादि जाड्य, आगामि संसार भय एवं तन्मूलक अज्ञान विनष्ट होता है।

(२४८) (३) श्रवण—नाम रूप गुण लीलामय शब्दों का श्रोत्र स्पर्श,—(क) नाम श्रवण, (२४९) (ख) रूप श्रवण, (२५०) (ग) अन्वय मुख से गुण श्रवण, भगवान् के समान महाभागवतवृन्द के गुणश्रवण विहित है। (२५१-५२) व्यतिरेकमुख से—निन्दक, व्याधवत् इहलोक परलोक के सुख से वञ्चित (२५३) (घ) लीला-श्रवण—लीला वर्णन निबन्धन श्रीमद्भागवत का आविर्भाव। (२५४) लीला—द्विविधा-(अ) सृष्ट्यादि रूपा, (आ) लीलावतार विनोदरूपा लीला, तदितर श्रवण रागनाशक एवं परम मनोहर, उक्त लीला श्रवण से मर्त्य शरीर जितमृत्यु होकर पार्षद देह लाभोपयोगी होता है। यथा—ध्रुव। तत्परिकर श्रवण।

(२५६) साधन क्रम—प्रथमतः अन्तःकरण शुद्धिहेतु नामश्रवण, तत्पश्चात् गुणस्फुरण, एवं परिकर स्फुरण, अनन्तर लीलास्फुरण सुष्ठु होता है। कीर्त्तन स्मरण में भी उक्त क्रम है। महन्मुखरित होने से भगवत् कथा श्रवण महामाहात्म्यजनक होता है, जात रुचि भक्त के पक्ष में परम सुखद होता है। (क) महदाविर्भावित श्रीमद्भागवत एवं श्रीकृष्णकर्णामृतादि ग्रन्थ हैं। (२५८) (ख) महत् कीर्त्यमान—श्रीपृथु-वाक्य, श्रीनारद वाक्य हैं।

(२५९-६१) श्रीभागवत—श्रवण-तादृश प्रभावमय शब्दात्मक हेतु एवं परम रसमयत्व हेतु परम श्रेष्ठ है। (२६२) सवासन महानुभव के मुख से निजाभीष्ट नामादि श्रवण बारम्बार कर्त्तव्य है। श्रीकृष्ण के परम भगवत्त्व हेतु श्रीकृष्णनामादि श्रवण परम भाग्य से ही होता है। श्र शुकदेवादि महत् कीर्त्तन नामादि ही कीर्त्तनीय हैं। श्रवणभिन्न कीर्त्तनादि का ज्ञान नहीं होता है। अतः श्रवण करना पहले सबके पक्ष में परम कर्त्तव्य है। महत्कृत कीर्त्तन का श्रवण भाग्योदय सबके पक्ष में न होने से स्वयं ही पृथक् कीर्त्तन करे। वक्ता उपस्थित होने से श्रवण करे, श्रोता उपस्थित होने पर कीर्त्तन करे। तद्भिन्न समय में स्वयं गान करे।

(४) कीर्त्तन—(क) नामकीर्त्तन-समस्त पापों का प्रायश्चित्त है। श्रीभगवान् की मति नामोच्चारण कारी के प्रति होती है। स्वाभाविक भगवदावेश हेतु तदीय स्वरूप भूतत्व हेतु नाम का एक देश भी परम भागवत के पक्ष अतीव प्रीतिकर है।

(२६३) नामकीर्त्तन फल—निज प्रिय नामकीर्त्तन द्वारा अनुराग उत्पन्न होता है, एवं चित्त द्रवता हेतु भाव वैचित्री होती है, अतएव नामकीर्त्तन का ही साधकतमत्व है। नामकीर्त्तन के द्वारा ही एक जन्म में अरूढ़ योगिवृन्द को बहुजन्म दुर्लभा गति लाभ होती है, भगवान् में मन आसक्त न होने से दिन-रात निर्भय से तद्प्रतिकर नामसमूह का कीर्त्तन निर्लज्ज भाव से करे—सर्वदा ही गोविन्द नाम ग्रहणीय है।
(२६४) श्रीहरिनाम कीर्त्तन—पाप क्षय करने के पश्चात् भगवदैश्वर्य्य सौन्दर्य्यादि का अनुभव कराता है।

(२६५) साधक एवं सिद्ध—सबके पक्ष में ही श्रीहरिनाम कीर्त्तन परम श्रेयःस्कर है। अर्थात् उच्च नाम सङ्कीर्त्तन ही सबके पक्ष में प्रशस्त है। दशनामापराध परित्याज्य—(१) सत् की निन्दा—वाचिक हिंसा—षट् वैष्णवापराध परित्याज्य हैं—हन्ति निन्दति वै द्वेष्टि वैष्णवान् नाभिनन्दति। क्रुध्यते याति नो हर्षं दर्शने पतनानि षट्॥" विष्णु वैष्णव निन्दक की जिह्वा को छेदन करना कर्त्तव्य है, असमर्थ होने पर अन्यत्र गमन वा स्वप्राण त्याग कर्त्तव्य है। (२) श्रीविष्णु का सर्वात्मकत्व हेतु उनसे शिव के गुण नामादि शक्त्यन्तरसिद्ध जो मानता है, वह नामापराधी है। (३) श्रीगुरु की अवज्ञा, (४) श्रुतिशास्त्र निन्दन, (५) अर्थवाद, 'यह स्तुति मात्र है' इस प्रकार मानना। (६) कल्पन—नाम माहात्म्य को गौण करने के निमित्त अन्य प्रकार चिन्ता करना, (७) नाम के बल से पाप कार्य्य में प्रवृत्ति, भगवच्चरण प्राप्ति साधन नाम को परम घृणास्पद पाप नाश हेतु विनियोग करने से नाम को अपमानित किया जाता है—अतः महा अपराध

होता है। जो निरन्तर नामसङ्कीर्त्तन द्वारा ही विदूरित होता है। अश्वमेध यज्ञ रूप भगवद्भजन के बल से वृत्र हत्या में प्रवृत्त इन्द्र का दोष नहीं हुआ। (८) धर्म व्रतत्यागादि के सहित नाम को समान मानना अपराध है। (९) अश्रद्धालु विमुख एवं सुनने में अनिच्छुक व्यक्ति को नामोपदेष्टा अपराधी है। (१०) श्री-हरिनाम माहात्म्य श्रवण करके भी अहङ्कार हेतु नाम को अनादर करना अपराध है। इन दशनामापराधी व्यक्ति ही पाषण्डी नाम से अभिहित होता है। महदपराध भोग का महत् के अनुग्रह के द्वारा महदपराध की निवृत्ति होती है।

(२६६) (ख) श्रीरूपकीर्त्तन—यथा—श्रीपरीक्षित् एवं चतुःसन वाक्य में वर्णित है। (२६७) (ग) गुणकीर्त्तन—श्रीव्यास के प्रति श्रीनारद वाक्य (२६८) श्रीभगवद् गुणकीर्त्तन—नित्य नूतनोल्लास हेतु साधक एवं सिद्धवृन्द का फल स्वरूप है। (घ) लीला कीर्त्तन—सश्रद्ध लीला श्रवण के लिए भगवान् शीघ्र हृदय में प्रवेश करते हैं। (२६९) भगवत् लीलामय-गान तदीय रतिप्रद है, सुकण्ठ होने पर नाम लीलादि का गान ही प्रशस्त है—गान शक्त्यभाव से श्रवण, तदाशक्त्य भाव से तदनुमोदन करना कर्त्तव्य है। गायकवृन्द—प्राणिमात्र के परम उपकारी हैं, सुतरां भक्तवृन्द के भी उपकारी हैं। बहुजन मिलित कीर्त्तन को सङ्कीर्त्तन कहते हैं। वह चमत्कार विशेष पोषक हेतु गानापेक्षा अधिक माहात्म्ययुक्त है। तृणादपि सुनीच, तरु के समान सहिष्णु, अमानी एवं मानद होकर नाम सङ्कीर्त्तन करे।

(२७१) कलिकाल में कीर्त्तन के द्वारा ही अनुयुगीय साधना का फल लाभ होता है। (२७२) कलि-काल में साधनान्तर निरपेक्ष सङ्कीर्त्तन के द्वारा ही सर्व स्वार्थ लाभ होते हैं। (२७३) कीर्त्तन द्वारा ही भगवन्निष्ठारूप परमा शान्ति लाभ होती है। एवं संसार नाश होता है,—भक्तिमात्र ही काल देशादि नियम निरपेक्ष है। अतएव कलिसङ्ग द्वारा कीर्त्तन का उत्कर्ष नहीं है। समाधिपर्य्यन्त स्मरण से कीर्त्तन गरीयान् है। विष्णुपुराण में उक्त है—समस्त युगों में कीर्त्तन की सामर्थ्य समान होने पर भी कलि में भगवान् कृपा पूर्वक उसको ग्रहण करते हैं, अतः उसकी प्रशंसा है। अतएव कलियुग में अन्यान्य भक्त्यनुष्ठान भी कीर्त्तन के सहित ही करना कर्त्तव्य है। स्वतन्त्र नाम कीर्त्तन अत्यन्त प्रशस्त है।

(२७४) कलि में नाम कीर्त्तन प्रचार प्रभाव के द्वारा ही परम भगवत् परायणत्व सिद्ध होता है। कलि में पाखण्ड प्रवेश द्वारा नामापराधीगण भगवद्बहिर्मुख होते हैं। (२७५) निजदैन्य, अभीष्ट विज्ञप्ति एवं स्तवपाठ भी कीर्त्तनान्तर्भूत हैं। अन्य नामापेक्षा श्रीभागवतस्थित नामादि कीर्त्तन अधिकतर प्रशस्त है। शरणापत्त्यादि द्वारा शुद्धान्तःकरण होने से नामकीर्त्तन के अपरित्याग द्वारा ही स्मरण कर्त्तव्य है।

(५) स्मरण—मन के द्वारा अनुसन्धान स्मरण सामान्य है,(भा० ११।१३।१४) (२७६ क) नामस्मरण —इसमें शुद्धान्तःकरण की अपेक्षा है। (२७७ ख) रूपस्मरण, श्रीकृष्ण में प्रेमभक्ति ही इसका मुख्य है। अन्य सब आनुषङ्गिक फल हैं। (२७८) (ग) गुणस्मरण, (घ) परिकर स्मरण, (ङ) सेवास्मरण, (च) लीला स्मरण। स्मरण पञ्चविध—स्मरण, धारणा, ध्यान, ध्रुवानुस्मृति एवं समाधि। समाधि—भगवदाविष्ट-चित्तता प्रायशः शान्त भक्त की होती है, यथा श्रीमार्कण्डेय की। यह 'असंप्रज्ञात' नामक ब्रह्मसमाधि से पृथक् है। (२७९) लीलाभिन्न अन्य विषय की अस्फूर्त्ति को समाधि है। यथा दास्यादि भक्तवृन्द की।

(२८०-८२) (छ) पादसेवा—रुचि एवं शक्ति की विद्यमानता होने पर स्मरण को परित्याग न करके ही पादसेवा कर्त्तव्य है। कोई कोई व्यक्ति, सेवास्मरण सिद्धि हेतु पादसेवा करते हैं। सेवा—कालदेशादि के उपयोगी परिचर्य्यादि पर्य्याय शब्द है। (२८३) भगवत् परिकरत्व प्राप्ति हेतु पादसेवा के मध्य में श्रीमूर्त्ति-दर्शनादि एवं तदीय तीर्थ गमनादि अन्तर्भूत हैं। श्रीगङ्गा प्रभृति भक्ति का निदानत्व हेतु गङ्गादि एवं गङ्गास्थित प्राण्यादि परम भागवत होने के कारण भगवत् पाद सेवा में ही उनकी सेवा पर्य्यवसित होती है

निजोपासना स्थान ही अधिक सेव्य है। श्रीकृष्ण की पूर्ण भगवत्ता हेतु उक्त स्थान ही पूर्ण पुरुषार्थद होता है। परम भगवत् प्रियत्व हेतु तुलसी सेवा सत् सेवा में अन्तर्भुक्त है।

(७) अर्च्चन—आगमोक्त आवाहनादि क्रमयुक्त है। यदि अर्च्चन मार्ग में श्रद्धा हो तो शिष्य, मन्त्र-गुरु के निकट विशेष रूप से जिज्ञासा करे। अर्चन के बिना भी शरणापत्त्यादि का एक अङ्ग के द्वारा ही पुरुषार्थ सिद्ध होता है। अतएव यद्यपि श्रीभागवत मत में पञ्चरात्रादिवत् अर्च्चन मार्ग की आवश्यकता नहीं है, तथापि, जो लोक—श्रीनारदादि के वर्त्मानुसरण करके दीक्षाविधान के द्वारा श्रीभगवान् के इच्छुक हैं, उनके पक्ष में दीक्षा ग्रहणानन्तर अर्च्चन अवश्य कर्त्तव्य है। दीक्षा द्वारा पापक्षय, श्रीमन्त्र में भगवत्स्वरूप ज्ञान एवं तद्द्वारा श्रीभगवान् के सहित सम्बन्ध विशेष ज्ञान होता है। सम्पत्तिमान् गृहस्थवृन्द के पक्ष में अर्च्चन मार्ग ही मुख्य है, वैसा न करके निष्किञ्चिनवत् केवल स्मरणनिष्ठ होने से वित्तशाठ्य दोष होता है। अपर के द्वारा अर्च्चन कार्य्य निष्पन्न कराने से व्यवहारनिष्ठ एवं अलसत्व प्रतिपादक एवं अश्रद्धामयत्व हेतु दोष होता है। अत्यन्त विधिसापेक्ष हेतु एवं द्रव्य साध्यता के कारण गृहस्थ के पक्ष में अर्च्चन वा परिचर्य्या मार्ग का प्राधान्य है। दीक्षाग्रहणान्तर गृहस्थवृन्द को मूलसेव्यरूप श्रीभगवदर्च्चन करना चाहिये वैसा न करने से नरकपात अवश्यम्भावी है। अशक्त वा अयोग्य पक्ष में पूजादर्शन एवं मानसपूजा कर्त्तव्य है। अर्च्चन मार्ग में किन्तु विधि अवश्य अपेक्षणीय है। अर्च्चन कार्य्य करने के पूर्व में दीक्षाग्रहण कर्त्तव्य है, एवं शास्त्रीय विधान शिक्षणीय है। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार ही दीक्षाग्रहण कर्त्तव्य है। अर्च्चन मार्ग में स्वभावतः कदर्यशील विक्षिप्तचित्त लोक का स्वभाव सङ्कोचकरण निबन्धन दीक्षाग्रहणादि की मर्य्यादा का स्थापन ऋषिवृन्द ने किया है। दीक्षा एवं नाममय मन्त्र उभय ही फलादि प्रदान करने में एक अपर की अपेक्षा नहीं करता है। ग्रहण मात्र से ही शक्तिद, एवं अभिवाञ्छित फलद है। श्रीगोपाल मन्त्र, स्वप्रकाश होने के कारण साध्यादि व अपेक्षा इसमें नहीं है। शास्त्रविधि के अनुसार अर्च्चन करके नीच व्यक्ति भी शीघ्र फल लाभ करता है। स्वप्न में भी उसका विघ्न उपस्थित नहीं होता है, किन्तु विधि को अनादर करके विद्वान लोक भी सिद्ध नहीं हो सकता है, यथा—पृथु के प्रति पृथिवी का वाक्य है।

अर्च्चन द्विविध—(क) केवल-निरपेक्ष श्रद्धावान् का। यथा—आविर्होत्र एवं श्रीनारद वाक्य है। (ख) कर्ममिश्र—व्यवहार चेष्टातिशयवान्, श्रद्धालु, प्रतिष्ठित एवं लोकसंग्रह पर गृहस्थ के पक्ष में है।

(२८५) श्राद्धादि लोकाचार—विवेकज्ञ सिद्ध गृहस्थ के पक्ष में आमरण प्रयत्नतः रक्षणीय है। इस सम्बन्ध में कर्म व्यवस्था द्विविध हैं (क श्रीनारदपञ्चरात्रादि के मत में अन्तर्य्यामी भगवद् दृष्टि के द्वारा ही सर्वाराधन कर्त्तव्य है। (ख) विष्णुयामल के मत में— विष्णु निवेदितान्न द्वारा देवतान्तर को एवं पित्रादि की आराधना करना विहित है। श्रीभगवत् पीठावरण पूजा में गणेश दुर्गादि भगवत् स्वरूपभूत शक्त्यात्मक भगवत् नित्यसेवक हैं। श्रुति तन्त्रादि में भी श्रीकृष्णस्वरूपभूत श्रीमदष्टादशाक्षरादि मन्त्र के अधिष्ठातृदेवता रूप में दुर्गानाम्नी भगवद्भक्त्यात्मक स्वरूपभूत शक्तिवृत्ति विशेष है। उसकी ही दासीतुल्या मायांशरूपा दुर्गा, इस प्राकृतलोक में मन्त्र रक्षा लक्षण सेवार्थ नियुक्त है। मायातीत अप्राकृत वैकुण्ठादि लोक में दिक्-पालगण भी नित्य अप्राकृत भगवदंश रूप सर्वत्र गोपवेशधर श्रीहरि देवदेवेश हैं। केवल रूपभेद से नामभेद कथित है। अनन्य भक्तगण, विष्वक्सेनादिवत् विनायकादिका एवं दिक्पालगण का भागवत् एवं नित्य वैकुण्ठादि के सेवक होने के कारण सम्मान करे। प्रोक्षणादि के द्वारा पूजा करे। श्रीहरि के भुक्तावशेष प्रदान उन सबको करे, एवं तच्छेष द्वारा होम भी करे।

(२८६) भगवदवतार देवता न होने के कारण, भूतादि की पूजा भगवत्पूजाङ्ग रूपमें विहित होने पर भी नहीं करनी चाहिये। अवश्य पूज्य सङ्कर्षणादि की पूजा भी तत्स्वीकृत मद्यादि के द्वारा न करे। पीठ पूजा में भगवद्धाम में श्रीगुरुपादुका का पूजन सङ्गत है। कारण, जो भगवान् यहाँ व्यष्टि भक्तावतार गुरु-

गुरु रूप में वर्त्तमान है, वही भगवद्धाम में भगवद् के बामभाग में समष्टि साक्षात् अवतार श्रीगुरुदेव रूप में विद्यमान् हैं।

श्रीरामादि उपासना में, श्रीकृष्ण की गोकुलोपासना में शङ्खचक्रादि श्रीकृष्ण के चरणचिह्न,-गङ्गा-मानस गङ्गा, श्वेतद्वीप-गोलोक, जिस प्रकार ब्रह्मसंहिता में उक्त है, तत्रत्य अप्राकृत सोम सूर्य्याग्नि मण्डल अतिशैत्य ताप गुण परित्याग पूर्वक विद्यमान हैं। जिस प्रकार नृसिंहतापनी में लिखित है। कर्ममिश्रत्वादि निरसन हेतु भगवत् परिकरों का वर्णन हुआ।

शुद्ध भक्तों की भूतशुद्धि,—निजाभिलषित भगवत् सेवोपयोगि तत् पार्षददेह भावना ही विहित है। भगवत्सेवैक पुरुषार्थी व्यक्तिसमूह के पक्ष में निज आनुकूल्य हेतु उक्ताचरण श्रेयस्कर है। केशवादि न्यास-अधमाङ्ग विषय में तन्मूर्त्तिध्यान, एवं तत्तन्मन्त्र जप करके तत्तदङ्ग स्पर्श ही करे। मुख्य ध्यान श्रीभगवद्-धामगत ही है। कामगायत्री ध्यान एवं मानस पूजा धाम में ही करनी चाहिये। कारण, सूर्य्यमण्डल में श्रीवृन्दावननाथ—तेजोमय प्रतिमा रूप में ही विद्यमान हैं। साक्षात् भाव से नहीं रहते हैं, वहिरूपचार के द्वारा मानसिक पूजा में वेण्वादि की पूजा भगवन्मुखादि में करनी चाहिये। निज मुखादि में नहीं करनी चाहिये। भूतपूर्व भगवत्परिकर लीला संवलितत्व भी कल्पनामय नहीं है। अर्थात् यथार्थ ही है।

मानसपूजा माहात्म्य—यह मानसयोग-जराव्याधि भय विनाशक है। अष्टविधा प्रतिमा के मध्य में मनोमयी मूर्त्ति का विधान स्वतन्त्र रूप से होने के कारण, कहीं पर मानसपूजा स्वतन्त्र से भी होती है। पूजास्थान विविध हैं—शालग्राम शिलादि में—मथुरादि क्षेत्र श्रीकृष्णादि का महाधिष्ठान है, प्रतिमा—द्विविध होते हैं—चला एवं अचला। परमोपासकवृन्द प्रतिमा को साक्षात् परमेश्वर जानते हैं, अतएव उनकी पूजा में आवाहनादि विशेष विवरण, शूद्रादि पूजित अर्च्चा विग्रह पूजा में जो निषेध वचन है—वह अवैष्णव शूद्र पर है। भक्त के द्वारा उपास्य अर्च्चा विग्रह की सर्वोत्कर्षता है। श्रीकृष्ण ही एकमात्र पूजा के पात्र हैं यथा—राजसूय यज्ञ में विहित हुआ है।

(२८७-८९) ज्ञानादि परिमाण एवं भागवत् वर्त्तनातिशय्य हेतु पुरुष में पात्रोत्कर्षता (२९०-९१) त्रेतादि युग में ही पृथक् प्रतिमा विहित है। (१९२-२) पुरुषों के मध्य में ब्राह्मण ही श्रेष्ठपात्र हैं। मुमुक्षु के द्वारा ज्ञानि पूजा ही मुख्या है।

(२९४) प्रेमभक्ति अभिलाषी व्यक्ति के पक्ष में प्रेमभक्त की पूजा ही श्रेष्ठ है, श्रीभगवान् के विलक्षण प्रकाश स्थान होने के कारण, अर्च्चाविग्रह का ही आधिक्य स्थापित हुआ है। श्रीभगवन्निवास क्षेत्रादि महातीर्थस्थ कीटादि भी कृतार्थ हैं।

(२९५) एकादश पूजाधिष्ठान भेद से पूजा साधनभेद अपासना द्विविधा हैं। (क) अधिष्ठान की परिचर्य्या के द्वारा अधिष्ठाता की उपासना होती है। (ख) साक्षात् अधिष्ठाता की उपासना निज प्रेम सेव्य स्वाभीष्टरूप विशेष परम सुकुमारत्वादि बुद्धिजनित प्रीति के द्वारा ही सर्वथा सेवनीया है। अग्न्यादि में तदन्तर्य्यामी रूप में चिन्ता करनी चाहिये। भक्त की भक्ति रीति के द्वारा ही परमेश्वर में विशेष भावोदय होता है। परिचर्य्या विधि में तद् देश काल सुखद द्रव्य विहित हैं। इष्टमन्त्र ध्यान—ध्यान स्थल समस्त ऋतु में सुखमय मनोहर रूप रस गन्धादि मय में होने चाहिये। अन्यथा समस्त आग्रह व्यर्थ होते हैं।

(२९६) श्रीकृष्णैकान्तिक भक्तवृन्द—तन्मूलमन्त्र के द्वारा ही नैवेद्यार्पण करें। श्रीकृष्ण के नरलीलत्व हेतु भोजन भी लोक प्रसिद्धवत् ही है। जप में मन्त्रार्थ विधि प्रकार होने पर भी निज पुरुषार्थ के अनुकूल ही चिन्तनीय है। श्रीमदष्टादशाक्षरादि मन्त्र में आत्मसमर्पणात्मक चतुर्थ्यन्त पद योजनीय है। शुद्धभक्ति सिद्धि हेतु समस्त भक्तयङ्ग के शुद्धाशुद्धत्व द्विविध भेद सम्मत हैं।

(२९७) निरुपाधि प्रेम के द्वारा पूजा करने से ही श्रीभगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। (२९८) अर्चनाधिकारी निर्णय,—श्रीविष्णु आराधना में स्त्री, शूद्र, एवं सर्व वर्ण सर्व आश्रमों का अधिकार है। नृमात्र का ही दीक्षाविधान द्वारा द्विजत्व विहित है। समस्त युगों में समस्त लोकों के द्वारा समस्त आविर्भाव यथेच्छ पूज्य हैं। (२९९) श्रीएकादशी जन्माष्टम्यादि व्रत, अर्च्चनान्तर्भूत हैं। दीक्षित वैष्णव, शैव एवं सौर के पक्ष में एकादशी व्रतपालन अवश्य कर्त्तव्य है। द्वादशी में दिवानिद्रा, तुलसी चयन एवं श्रीविष्णु का दिवास्नान निषिद्ध है। अष्ट महाद्वादशी श्रीविष्णु प्रीतिद हैं। वैष्णवों के पक्ष में अनिवेदित द्रव्य भोजन नित्य निषिद्ध हेतु महाप्रसादान्न परित्याग ही एकादश्यादि में निराहारत्व है। श्रीहरिवासर में जागरण न करने से श्रीकेशव पूजा में अधिकार नहीं होता है। परमभक्ति परायण श्रीमदम्बरीषादि के चरित्र में एकादशी का अनुष्ठान प्रदर्शित हुआ है। अतएव उक्त एकादशी व्रत अन्तरङ्ग वैष्णव धर्म एवं भागवत सम्मत है। कार्त्तिक व्रत एवं एकादशी व्रतानुष्ठान के प्रभाव से एक ब्राह्मण कन्या सत्यभामा हुई थी।

माघस्नान—सदाचार कथन के द्वारा श्रीरामनवमी एवं वैशाख व्रतादि भी विहित हैं (३००) तादृश व्रत के मध्य में भी निजेष्टदेव का व्रत सुष्ठु विधेय है। वैष्णवों के द्वारा यत्नपूर्वक सेवापराध वर्जनीय है। प्रभुत्वाभिमान से उत्पन्न होने के कारण अपराधसमूह अनादरात्मक हैं। अतएव अपराध का निदानस्वरूप अनादर सर्वथा परित्याज्य है।

(३०१-२) महदनादर ही सर्वनाशक है। (३०३) प्रमादवशतः भगवदपराध होने से पुनर्वार भगवत् सन्तोषण करना चाहिये। श्रीभगवान्,—गीताध्याय, सहस्रनाम माहात्म्य एवं तुलसी स्तवादि पाठ द्वारा सेवापराध क्षमा करते हैं। मथुरादि सेवा द्वारा सापराधलोक पवित्र होता है। एवं सहस्रजन्मार्जित अपराध विनष्ट होता है। महत् की प्रसन्नता व्यतीत महत् अपराध विनष्ट नहीं होता है। अतएव चाटुकारादि द्वारा किंवा महत् की प्रीति निमित्त दीर्घकाल निरन्तर भगवन्नाम कीर्त्तन द्वारा श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करके तदपराधक्षमापणीय है।

(८) (वन्दन)—

श्रीभगवान् के अनन्त ऐश्वर्य्य गुणसमूह के श्रवणानन्तर तद्‌गुणानुसन्धान– पादसेवादि में विधृत दैन्य एवं नमस्कार। नरसिंह पुराण में एवं श्रीमद्भागवत में उक्त है—श्रीकृष्ण के प्रति ब्रह्मा का कथन है– एक बार मात्र नमस्कार के द्वारा ही मोक्ष लाभ होता है। एक हस्त से, वस्त्रावृत देह से, भगवदग्र, पृष्ठ, वाम भाग में वा अतिनिकट में, गर्भमन्दिर में नमस्कार करने पर अपराध होता है।

(३०४-९) दास्य—श्रीविष्णु का दासाभिमान। केवलमात्र दासाभिमान के द्वारा ही सिद्धि होती है। तादृश भजन प्रयास की आवश्यकता नहीं है। (३०५) दास्य सम्बन्ध के द्वारा समस्त भजन महत्तर होता है। तदधिक अपर कुछ भी नहीं हैं। दुर्वासा अम्बरीष को कहे थे।

(३०६-८) (१०) सख्य—हिताशंसनमय बन्धुभाव लक्षण प्रेम। विश्रम्भ विशिष्ट भावनामय होने के कारण दास्य की अपेक्षा सख्य उत्तम है। एवं परमसेवानुकूल होने के कारण, उपादेय है। अदेव होकर देवता की अर्च्चना न करे। इस प्रकार विधान विद्यमान होने पर भी शुद्ध भक्तवृन्द उक्त भाव को सेवा विरुद्ध होने के कारण—उपेक्षा करते हैं। साध्यत्व हेतु प्रेम नव भक्ति का अन्तर्भूत नहीं है। भगवान् के सहित जीव का नित्य सहवास के कारण, भगवत्कृत हिताशंसन नित्य है। अतएव भजन विशेष के द्वारा तद्विषयक हिताशंसनमय सख्य विशिष्ट रूप से सम्पादन करना अतदुष्कर नहीं है। जिस प्रकार असुर बालकों के प्रति प्रह्लाद का उपदेश है। भगवान् मायिक अमायिक सम्पत्ति दान के द्वारा हिताशंसी हैं। अतएव आरोपित नश्वर विषय के सम्बन्ध में जायापत्यादि के निमित्त उपार्जन में रत होने का प्रयोजन ही क्या है? सत्स्त्री के द्वारा सत्पतिवत् भक्ति द्वारा भगवान् वशीभूत होते हैं।

(३०९) (११) आत्मनिवेदन—देहादि शुद्ध आत्म पर्य्यन्त गोविक्रयवत् सर्वतोभावेन श्रीभगवान् को अर्पण। उसका कार्य्य तीन प्रकार है, (क) निजदेह दैहिक चेष्टा राहित्य, (ख) निज साधन साध्यसमूह का अर्पण, (ग) उनके उद्देश्य से ही केवल चेष्टा, कोई कोई देहार्पण, कोई कोई शुद्ध क्षेत्रज्ञार्पण, कतिपय व्यक्ति केवल दक्षिण हस्तार्पण करते हैं। अम्बरीष सर्वात्म निवेदन किये थे। स्नान परिधानादि तत्सेवा योग्यता हेतु करते हैं। अतः उससे आत्मार्पण भक्ति की हानि नहीं होती है। आत्मनिवेदन द्विविध हैं—(क) भाव के बिना–यथा—'मर्त्यो यदात्यक्त समस्त कर्मा, (भा० ११।२९।३४) (क) भाववैशिष्ट्य के सहित–यथा—'दास्यादि में' (११।११।३५) (३१०) अधिकारिभेद से ओषधिवत् भक्तयङ्ग निष्ठा होती है–इति वैधीभक्ति।

रागानुगाभक्ति—विषयी लोकों की विषयासक्ति के अतिशय्यवत् भक्त का भगवत् कृपादि विषय में स्वाभाविक संसर्गेच्छातिशयमय प्रेम ही राग है। विशेषण भेद वा दास्य सख्यादि भेद से राग विविध होते हैं। मायामोहित शिव का मोहिनी मूर्त्ति में जो भाव है, वह भागवत सम्मत नहीं है। दास्यादि राग प्रयुक्त श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण-पादसेवन-वन्दन-आत्मनिवेदन प्राया भक्ति ही रागात्मिका। जिनकी दास्यादि राग विशेष में रुचि हुई है, किन्तु रागविशेषोत्पन्न नहीं हुआ है, उनकी हृदयमणि–तादृश रागसुधाकर के किरणाभास से समुल्लसित होने से तादृश रागात्मिका भक्ति की शास्त्रादि श्रुता परिपाटी में रुचि होती है, अतएव तादृश रुचि के द्वारा तदीय रागानुगमनकारी रागानुगाभक्ति उनमें प्रवर्त्तित होती है।

यह विधि के प्रयुक्त नहीं है, किन्तु रुचि के द्वारा प्रवर्त्तित है। अतएव ऐसा कहना समीचीन नहीं होगा कि—विधि के अधीन न होने से भक्ति ही नहीं होगी। जिस प्रकार श्रीपरीक्षित् के प्रति श्रीशुकदेव ने कहा है। वैधीभक्ति सापेक्षा होने के कारण, दुर्बला है, रागानुगाभक्ति–स्वतन्त्र प्रवर्त्तित होती है, अतः वह प्रबला है। अतएव भक्ति भिन्न अन्य विषय में अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में अनभिरुचित्वादि ही रागानुगाभक्ति जन्म का लक्षण है। विधिनिरपेक्षता हेतु पूर्वोक्त दास्य सख्यादि से विभेद को जानना होगा। अतएव रागानुगाभक्ति में विधियुक्त क्रम भी अत्याहत नहीं है किन्तु रागात्मिका श्रुत क्रम ही अत्याहृत है।

(३११) रागात्मिका रुचि–(भा० ११।८।३५) में उक्त है—रुचि प्रधान इस मार्ग में मन का प्राधान्य हेतु एवं तत् प्रेयसी रूप में असिद्धा पिङ्गला का तादृश भजन में प्रायशः मन के द्वारा ही युक्तत्वहेतु पिङ्गला ने भी मन के द्वारा ही विहार कामना की थी। इस दृष्टान्त के द्वारा तादृश मधुरभावाकाङ्क्षी भक्ति का भी श्रीमत् प्रतिमादि में औद्धत्य परिहृत हुआ। इस प्रकार पितृत्वादि भाव में भी अनुसन्धान कर लेना चाहिये।

(३१२) ब्रह्मवैवर्त्त में वर्णित कामकला में भी प्रेयसीत्वाभिमानमयी भक्ति है। सेवकत्वाद्यभिमानमयी रागात्मिका भक्ति में रुचि भी रागानुगा है। दास्य–यथा–प्रह्लाद का, वात्सल्य–यथा—स्कान्दोक्त प्रभाकर राजा का। मातृवत्' प्रभृति में 'वति' प्रत्ययान्त शब्द के द्वारा प्रसिद्ध तन्मातृ प्रभृति की अनुगत भावना ही अङ्गीकृत है। अभेद भावना अङ्गीकृत नहीं हुई है। अभेद भावना करने से अहङ्ग्रहोपासनावत् मातृ प्रभृति में अहङ्ग्रहोपासना से दोष होता है, पूर्वमीमांसा एवं श्रुतिस्मृति में कथित विधिलङ्घन से दोष जब होता है, तब विधिनिरपेक्षा रागानुगा भक्ति के द्वारा सिद्धि कैसे हो सकती है? श्रीभगवन्नाम गुणादि में वस्तुशक्ति की विद्यमानता हेतु धर्मवत् भक्ति में विधिसापेक्षता नहीं है। अतएव ज्ञानादि के बिना भी फल लाभ का वर्णन अनेक स्थानों में उपलब्ध है। जिसकी निजी प्रवृत्ति नहीं है, उसके पक्षमें ही विधि की अपेक्षा एवं क्रमविधि है। यद्यपि 'चक्षुनिमीलन पूर्वक धावित होने पर भी' इत्यादि नियम के द्वारा भागवत धर्म का आचरण जिस किसी प्रकार से होने पर भी सिद्धि सुनिश्चित है, तथापि रुचि के अभाव से, रागात्मिका भक्ति कौशल अनभिज्ञ विभिन्न विषयों में विक्षेपवान् लोक को सुस्थिर वर्त्म प्रवेश कराने के निमित्त एवं क्रमशः चित्ताभिनिवेश हेतु मर्य्यादा रूप में क्रम विधि निर्मित हुई है। अन्यथा सन्ततः तद्भक्त्युन्मुखत्व-

जनक तादृश रुचि न होने के कारण, एवं मर्य्यादा रूप क्रमविधि को अस्वीकार करने पर वह साधक आध्यात्मिकादि उत्पात के द्वारा निहत होता है। रुचि के द्वारा ही भगवन्मनोरम रागात्मिका में क्रमशः अभिनिवेश हेतु स्वयं प्रवृत्तिमान् भक्त के निमित्त मर्य्यादा निर्म्माण नहीं हुआ है। जिस प्रकार श्रीभगवान् उद्धव को कहे हैं—(भा०११।११।१३) दुर्लभ स न्धहेतु रागात्मिका भक्ति का अनुकरण करके जब पूतना ने भी धात्री गति प्राप्त की है, तब तदीय रुचिमान् सहसा भक्तवृन्द, निश्चय ही निरन्तर सम्यक् भक्तअनुष्ठान के द्वारा स्वस्व भावोचित प्रेम सेवा प्राप्त करेंगे। भक्ति निष्ठा रुचि के द्वारा वा शास्त्रनिष्ठा में आदर के द्वारा एकान्तित्व होता है, तदुभय के अभाव में एकान्तत्व—दम्भमात्र ही है। श्रुति, स्मृति, पुराणादि वाक्य द्वारा एकान्तित्वाभिमानी को लक्ष्य करके निन्दा की गई है। 'भगवत्प्रीति वा रुचि के बिना वेदोक्त कर्म न करके स्वतन्त्र भाव से कर्म करने से ही पाषण्डी होता है। इस प्रकार पाद्मोत्तरखण्ड में वर्णित है। उसका अभिप्राय—अज्ञान की निन्दा करना नहीं है, किन्तु शास्त्रानादर का ही निन्दा करना है। मतविशेष के आदरमात्र के द्वारा आदृता रागानुगामी, अजात तादृश रुचिशील भक्त के द्वारा एवं ज्ञात तादृश रुचिशील प्रतिष्ठित भक्त के द्वारा भी लोकशिक्षार्थ वैधी संवलिता ही अनुष्ठेया है। मिश्र भक्ति में रागानुगा के सहित यथायोग्य रूप में एकीकरण करके ही वैधीभक्ति आचरणीया है। यथा श्रीअष्टादशाक्षर मन्त्र ध्यान सम्बन्ध में उक्त है।

विधि एवं निषेध—धर्मशास्त्रोक्त एवं भक्ति शास्त्रोक्त भेद से द्विविध हैं। भगवद्भक्ति में विश्वास हेतु अथवा दुःशीलता हेतु धर्मशास्त्रोक्त विधि एवं निषेध पालन न करने से अथवा करने से वैष्णव भाव से भ्रष्ट नहीं होना पड़ता है। वैष्णव शास्त्रोक्त आवश्यक कृत्य का अनुष्ठान एवं निषिद्ध कृत्य का परिहार—श्रीविष्णुसन्तोषार्थ ही होता है। सुतरां रुचिमान् व्यक्ति में स्वतः ही उक्त उभय विषय में प्रवृत्ति एवं अप्रवृत्ति होती है, कारण, तदीय सन्तोष ही प्रीत का एकमात्र जीवन है।

अतएव तादृश प्रीति विषय में जो व्यक्ति स्वयं ही जिस राग का अनुगमन कर रहा है, तादृश रागात्मक सिद्धभक्त कर्त्तृक कृतत्व वा अकृतत्व का अनुसन्धान भी अपेक्षणीय नहीं है। पक्षान्तर में उक्त सिद्ध भक्त कर्त्तृक अनुष्ठित होने से साधारण जनगण का उक्तानुष्ठान में विशेष आग्रह होता है। यही प्रभेद है।

यहाँ पर किसी किसी स्थल में राग रुचि के द्वारा ही शास्त्रोक्त क्रमविधि का निर्वाह होने पर भी वह किन्तु रागानुगा के ही अन्तर्गत होता है। जो गोकुलादि में विराजित रागात्मिका के अनुगत हैं, एवं तत्पर भी हैं, वे श्रीकृष्ण के मङ्गल एवं तदीय संसर्ग विषयक विघ्नादि विनाश कामना से वैष्णव धर्म एवं लौकिक धर्मसमूह का अनुष्ठान करते हैं। रागानुगा में रुचि ही सद्धर्म प्रवर्त्तक होने के कारण—'श्रुति स्मृति ममैवाज्ञे' श्रुतिस्मृति मेरी आज्ञा हैं—यह वाक्य रागानुगाभक्ति विषयात्मक नहीं है, 'अपिचेत् सुदुराचार' इत्यादि वाक्यविरोध हेतु विधिवर्त्म—भक्ति विषयक नहीं है, विधि के द्वारा अप्रवर्त्तिता रागानुगा—वेद वाह्या नहीं है। अतएव रागानुगा, वैधी की अपेक्षा भी अतिशय बलीयसी एवं समीचीना है किन्तु रुचि की विद्यमानता से वेद वैदिक प्रसिद्धा ही रागानुगा है। किन्तु बुद्धचादि का व्यतिरेक मुख से वेद का वर्णन—वेद प्रति प्रतिपाद्य विषय विरुद्ध होने के कारण-वेदवाह्या है। अतएव रागानुगा—वैधी अपेक्षा भी अतिशयवता एवं समीचीना है, कारण, मर्य्यादा वचन आवेश निबन्धन ही हुआ है। रुचि विशेष लक्षण—मानस भाव के द्वारा जिस प्रकार आवेश होता है, विधि प्रेरणा द्वारा उस प्रकार आवेश नहीं होता है। आवेश का स्वारसिकमनोधर्मत्व हेतु अनुकूल भावसमूह के द्वारा आवेश तो होता ही है, परम निषिद्ध प्रतिकूल भाव के द्वारा भी आशु आवेश सामर्थ्य द्वारा ही प्रतिकूल दोष हानि एवं सर्वानर्थ निवृत्ति होती है।

(३१३) भावमार्ग की ही बलवत्ता प्रदर्शन हेतु युधिष्ठिर नारद को प्रश्न किये थे 'भगवन्निन्दा से वेग का नरक गमन हुआ, अथच चिरदोषी शिशुपाल को एकान्ति ज्ञानिजन दुर्लभ भगवत् सायुज्य लाभ क्यों हुआ ? (३१४) अनेक नरक भोग के पश्चात् पृथु जन्म प्रभावोदय वशतः वेण की सद्गति हुई थी, यह सुनने में आती है। भगवत् पीड़ाकर होने के कारण, किंवा सुरापानादिवत् निषिद्ध हेतु निन्दा श्रवण वशतः ही क्या नरकपात होता है ? (३१५-३१६) मूढ़ पुरुष के द्वारा निन्दादि प्राकृततम आदि गुण को उद्देश्य करके ही प्रवर्त्तित होते हैं। किन्तु जीववत् प्रकृति पर्य्यन्त वस्तु समूह में भगवान् का अभिमान न होने के कारण निन्दन के द्वारा भगवान् को पीड़ा नहीं होती है।

(३१७) शुद्ध सच्चिदानन्द विग्रहत्वादि हेतु भगवान् उस प्रकार निन्दा के अतीत हैं, जिनकी प्रतिमा में अथवा आभास में एक बार मात्र यथाकथञ्चित् आवेश होने से पाप नाश होता है। उन श्रीभगवान् में निन्दादि कृत वैषम्य न होने के कारण, शत्रुभाव से भी उनका ध्यान करने से तदावेश द्वारा निन्दादि पाप नाश होता है, अतएव सायुज्य प्राप्ति युक्तियुक्त है। वैरानुबन्ध, निर्वैर, भय, स्नेह एवं काम हेतु भगवदावेश होता है। (३१८) निन्दित वैरभाव के द्वारा जिस प्रकार आशु तदावेश होता है, उस प्रकार कर्त्तव्य बुद्धि से क्रियमाण वैधीभक्ति के द्वारा तदावेश नहीं होता है। (३१९) प्राकृत पेषस्कृत कीटवत् वैरभाव द्वारा निरन्तर तच्चिन्ता करके पापशून्य होकर शिशुपालादि नराकृति परब्रह्म को प्राप्त किये थे।

(३२०) शास्त्रविहित भगवद्धर्म वा भक्ति द्वारा भगवान् में मन को आविष्ट करके जिस प्रकार भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है, उस प्रकार अनेक व्यक्तियों ने तदविहित कर्म के द्वारा भी उनको प्राप्त किये हैं। (३२१) द्वेष एवं भय के द्वारा अघ होने पर भी निरन्तर आवेश के द्वारा वह विनष्ट होता है। कतिपय व्यक्ति—काम को भी अघ मानते हैं, भगवान् में काम त्रिविध होते हैं, (१) केवल (२) पति-पत्नि-भावयुक्त (३) उपपति भावयुक्त, (१) कुब्जा का केवल। स्नेहवत् काम का प्रीत्यात्मकत्व हेतु द्वेषवत् दोष नहीं होता है, उनका काम ही प्रेमैक रूप है। गोपियों की तुलना से ही कुब्जा का भाव की निन्दा होती है, स्वरूपत वह निन्दनीय नहीं है। कारण, कार्य्य द्वारा उसकी स्तुति की गई है। 'हे प्रिय ! मेरे पास कुछ दिन रहो' इस वाक्य से प्रीति प्रकाशित हुई। जो व्यक्ति, मनोग्राह्य प्राकृत विषय की कामना करता है, वह कुमनीषी है। कुब्जा ने तो भगवान् की कामना की थी, अतः वह परम सुमनीषिणी है। अतएव उसका काम,–द्वेषादिगण में अन्तर्भुक्त नहीं हुआ एवं पापावह भी नहीं हुआ। कामुकत्वाद्यारोपण एवं अधरामृत पानादि व्यवहार के द्वारा भी मर्य्यादा का अतिक्रम नहीं हुआ है। कारण, लोकवत् लीला कैवल्य ही है। इत्यादि न्याय से लीलास्वभावतः ही सुनिष्पादित हुई है। श्रीवैकुण्ठादि में श्री, भू, लीलादिशक्ति के द्वारा तादृशी लीला नित्यसिद्धा है। अत स्वतन्त्र लीलाविनोद भगवान् की तादृश लीला में अभिरुचि ही ज्ञात होती है। अतएव भगवत्ताद्यनुसन्धान एवं कामुकत्वादि मनन भी स्वाभाविक लीलारस मोहजनित तदभिरुचि वशत ही जानना होगा। परम शुद्ध रूप, तत्स्वरूपशक्ति विग्रह, तदन्यून तत्प्रेयसीजन द्वारा तदधरामृत पानादि सङ्गत ही है, एवं तदभिरुचि वशत ही होते हैं।

(२) पतिभावयुक्त—पतिभावयुक्त काम में दोष नहीं होता है, वास्तविक पक्ष में स्तुति सुनने में आती है। यथा—महिषीवृन्द का। महानुभाव मुनिवृन्द में वह भाव श्रुत होता है। कूर्म्मपुराण में इसका विशद वर्णन है। (३) उपपति भावयुक्त– यथा—गोपाङ्गनावृन्द का। उपपतिभाव जो दोषावह नहीं है, वह गोपी के उत्तरों के द्वारा, श्रीशुकदेव के द्वारा, एवं श्रीकृष्ण-वाक्य के द्वारा ही प्रमाणित हुआ है। अन्यत्र भी उपपति भाव दृष्ट होता है। यथा-पद्मपुराण में दण्डकारण्यवासी मुनिवृन्द के सम्बन्ध में उक्त है आगम प्रभृति में श्रीनन्दनन्दन की उपासना काम रूप में विहित होने के कारण एवं 'साक्षान्मन्मथमन्मथ' नाम के कारण गोपियों का काम एवं पुरुषदेहधारी मुनिवृन्द के अन्तर में स्त्रीभाव से भगवान् को उपभोग

करने का जो काम है, वह भगवान् कर्त्तृक उद्भावित अप्राकृत काम ही है। प्राकृत कामदेवोद्भावित प्राकृत काम नहीं है। उद्धवादि परमभक्तवृन्द ने भी गोपी-प्रेम की प्रशंसा की है। बृहद वामनपुराण में प्रसिद्ध है, श्रुतिगण भी नित्यसिद्ध गोपीभावाभिलाषिणी होकर गोपीरूप में ही तदन्तःपाती हुई हैं। इसमें श्रुति-वाक्य दृष्टान्त है। श्रीमद्भागवत में भी उक्त है—'शत्रुगण भी स्मरण प्रभाव से भगवान् को प्राप्त किये हैं। इस वाक्य के द्वारा भावमार्ग का आशु अर्थसाधकत्व प्रदर्शित हुआ है। 'समदृश' शब्द के द्वारा रागानुगा का साधकतनत्व प्रकाशित हुआ है। अन्यथा सर्व साधन साध्य विदुषी श्रुतिगण—अन्य भावावलम्बन से साधन में प्रवृत्त होते। बृहद्वामनपुराण में प्रसिद्ध वर्णन है—श्रीकृष्ण के नित्यधाम में नित्यसिद्धा गोपीवृन्द को श्रुतिवृन्द देखी थीं, अतः 'स्त्रियः' शब्द से उन सबका बोध होता है। काम से साधकचरी श्रुतिगण, भय से कंस, द्वेष से शिशुपालादि, सम्बन्ध से वृष्णिगण, स्नेह से पाण्डवगण एवं भक्ति से श्रीनारदादि श्रीकृष्ण को प्राप्त किये हैं।

(३२२) श्रीनारद—पूर्व जन्म में दासी पुत्र रूप में भक्ति के द्वारा ही पार्षद देह को प्राप्त किये थे। अधुना लब्धराग नारद में विधि की अनधीना रागात्मिका भक्ति विराजित है। आधुनिक व्यक्तिगण भी गोपियों के समान तद्गुणादि श्रवण के द्वारा गोपीभाव प्राप्त होते हैं। राग का ही विशेषत्व प्रदर्शन हेतु सम्बन्ध ग्रहण हुआ है। पूर्वावस्था को अवलम्बन करके गोपीवत् साधकचर वृष्णि विशेषगण—साधकत्व में ही निर्दिष्ट हुए हैं। अतएव सम्बन्धजन्य स्नेह को भी तदरुचिमात्र ही जानना होगा।

(३२३) वेण का भाव—उक्त पञ्च प्रकार भाव के मध्य में एक भाव भी भगवान् में नहीं था, केवल प्रासङ्गिक निन्दा मात्र वैरभाव था। वैरानुबन्ध नहीं था। अतएव तीव्र ध्यानाभाव हेतु ही उसका पापवशतः नरक ही हुआ। देवतुल्य स्वभावाक्रान्त व्यक्ति के पक्ष में निज मोक्ष लाभ हेतु भगवान् में वैरभावानुष्ठान का साहस करना अनुचित है। अतएव जिस किसी उपायों से श्रीकृष्ण में मनोनिवेश करे। इस प्रकार नारदोक्ति का तात्पर्य्य यह है कि—तादृश बहु प्रयत्न साध्य वैधभक्तिमार्ग द्वारा दीर्घकाल में जिनको प्राप्त किया जा सकता है, रागानुगा मार्ग में भाव विशेष मात्र द्वारा आशु उनको प्राप्त किया जा सकता है, अतएव रागानुगा ही युक्ततम उपाय है।

(३२४) श्रीनारद-वसुदेव-संवाद का तात्पर्य्य यह है—भावमार्ग मात्र की बलवत्ता के मध्य में कैमुत्य द्वारा रागानुगा का ही अभिधेयत्व है। अनुरक्तधी भक्तगण, अवश्य ही भगवान् को प्राप्त करते हैं। वैरानुबन्ध द्वारा जिस प्रकार—इस वाक्य के द्वारा वैरानुबन्ध को सर्वापेक्षा आधिक्य है—इस प्रकार अर्थ करना समीचीन नहीं है, जय-विजय की भगवत्प्राप्ति, स्वाभाविक सिद्धत्व हेतु, युद्ध लीला प्रपञ्चन निबन्धन ब्रह्महेलन रूप तदपराधाभास भोग के छल से सरम्भयोगाभास विहित हुआ है। कतिपय व्यक्ति द्वेषादि भाव को भी भक्ति मानते हैं। किन्तु भक्ति सेवादि शब्द आनुकूल्य में ही प्रसिद्ध है। वैरभाव में आनुकूल्यात्मक सेवा भक्ति का सर्वथा विरोधत्व हेतु भक्ति सिद्ध नहीं होता है। अतएव यह मत असत् है।

पद्मपुराण में उक्त है—भक्ति एवं द्वेषादि का भेद सुस्पष्ट है, भक्ति के द्वारा भगवान् दृष्ट होते हैं। रोष व मात्सर्य्य द्वारा भगवान् दृष्ट नहीं होते हैं। तब जो, "असुरवृन्द को भागवत मानता हूँ" इस प्रकार जो उद्धव का उत्कण्ठामय वाक्य है, वह तच्छ्रकोत्कण्ठावशतः केवल दर्शन भाग्यांश में उत्प्रेक्षा होने के कारण युक्तियुक्त है। असुरों में स्वयं भागवतत्व नहीं है। दृष्टान्त यह है—हमारे अन्तिम समय में भगवन्मुखचन्द्र दर्शन सौभाग्य नहीं है, किन्तु हतभाग्य हम सबकी अपेक्षा भगवन्मुखचन्द्र दर्शनकारी असुरवृन्द में वह भगवद्दर्शन सौभाग्य है, अतः असुरगण भी भागवत है। अतएव द्वेषादि में कथञ्चित् भी भक्ति नहीं है।

(३२५) मुख्य रागानुगाभक्ति—श्रीकृष्ण में ही है किसी अंशी वा अंश में नहीं है। कारण गोपीगण

काम हेतु—एवं दैत्यगण द्वेष हेतु' प्रथमतः श्रीकृष्ण में ही आविष्ट होते हैं, एवं अवशेष में सिद्धि को प्राप्त करते हैं, अतएव श्रीनारद ने भी कहा है-'जिस किसी उपायों से श्रीकृष्ण में मनोनिवेश करो' तादृश आवेश हेतु आशु उपासना होती है, अतः श्रीकृष्ण ने भी एकादश स्कन्ध में स्वयं कहा है—'चतुर्भुजाकार में ही वैधीभक्ति करनी चाहिये, मुझ में नहीं' श्रीगोकुल में शुद्ध राग दर्शन हेतु मुख्यतमा रागानुगा है, गोकुल में श्रीभगवान् स्वयं गोकुलवासियों के पुत्रादि भाव में विलास करते हैं। एक ही स्वेच्छामय भगवान् लोकों के भावानुसार भिन्न भिन्न रूप में एक ही समय में भिन्न भिन्न लोक के द्वारा दृष्ट होते हैं। भक्त कर्त्तृक निज भोजन-पान-स्नान-वीजनादि लक्षण लालनेच्छा भी उनमें अकृत्रिम होती है। साधारण भक्ति सद्भाव को लक्ष्य करके ही 'पत्र-पुष्प-फल-तोय' कहा गया है। सखावृन्द के द्वारा श्रीकृष्ण के पादसम्वाहनादि श्रीकृष्ण की आकाङ्क्षा से ही हुए हैं। अतः इस कार्य्य की प्रशंसा श्रीशुक ने की है। अपर के द्वारा सेवा ग्रहण रूप में वा माधुर्य्य प्रकाशावस्था में भी ऐश्वर्य्य स्फुरण हेतु, उस प्रकार व्यवहार से ऐश्वर्य्य की हानि नहीं है। कारण, ईश्वर में तद्द्वारा भक्तेच्छा विधानरूप प्रशंसनीय स्वभाव ही प्रकाशित होता है। जैसे श्रीव्रजेश्वरी कर्त्तृक बन्धनावस्था में भी यमलार्जुन मोचन श्रीकृष्ण किये हैं। तादृश ऐश्वर्य्य में भी श्रीव्रजेश्वरी की वश्यता ही श्रीशुक द्वारा प्रशंसित हुई है। अतएव जो लोक आज भी तदीय रागानुगापर हैं, उनके पक्ष में भी श्रीव्रजेन्द्रनन्दनत्वादि मात्र धर्म द्वारा ही उपासना समीचीन है।

श्रीविष्णुपुराण में लिखित है—श्रीगोवर्द्धन धारणोपलक्ष्य में विस्मयान्वित व्रजवासीवृन्द को श्रीकृष्ण निज बन्धुसदृश बुद्धि करने के निमित्त कहे थे। श्रीवसुदेवादि का ज्ञान—ऐश्वर्य्य प्रधान है, अतएव ऐश्वर्य्य माधुर्य्यद्वय विशिष्टा भक्ति ही भगवदनुमति है। पूर्वजन्म में भी उनकी तपादि प्रधान भक्ति वर्णित है। श्रीनन्दयशोदा के समान माधुर्य्य निष्ठ पुत्र पालन रूप सौभाग्य श्रीवसुदेव देवकी का नहीं है। सुस्पष्ट रूप से इसको कहते हुये श्रीशुकदेव एवं परीक्षित् उभय ने ही श्रीनन्दयशोदा का भाव की प्रशंसा की है।

'दर्शनालिङ्गनालापैः' इत्यादि द्वारा श्रीनारद भी श्रीवसुदेव देवकी को उपलक्ष्य करके साधक के प्रति उसका उपदेश किये हैं। श्रीभगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करके भी एवं भगवान् तादृश भावनावश होने पर भी स्वाभाविक पारमैश्वर्य्य का आधिक्य ही होता है। अतएव 'ज्ञात्वाज्ञात्वा' जानकर वा न जान-कर' इत्यादि उद्धव के प्रति श्रीभगवद् वाक्य द्वारा ज्ञानाज्ञान का अनादर करके 'केवल रागानुगा भक्ति का ही अनुष्ठान प्रशस्त है।' तज्जन्य श्रीगोकुल में ही रागात्मिका का शुद्धत्व हेतु श्रीगोकुलानुगा रागानुगा भक्ति ही मुख्यतमा है। अन्यत्र असम्भव हेतु रागानुगा का माहात्म्य सुनकर एवं पूर्णभगवत्ता देखकर श्रीकृष्ण भजन का ही महामहा माहात्म्य सिद्ध हुआ। उसमें भी गोकुल लीलात्मक श्रीकृष्ण-भजन ही सर्वोपरि है।

(३२६) श्रीमद्भागवत ग्रन्थ के प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण भजन का माहात्म्य प्रदर्शित हुआ है। अन्यान्य अवतार कथानुशीलन का फल श्रीकृष्ण में अभिनिवेश ही है। भक्ति सुलभा एवं निश्चितफला है, अतएव श्रीकृष्ण स्वरूप में ही भक्ति करना कर्त्तव्य है।

(३२७) शुद्ध भक्तगण अभिमानी नहीं होते हैं। कारण, शुद्ध भक्तगण—पुरुषार्थ साधन विषय में श्रीभगवान् के निरुपाधि दीनजन की कृपा को ही साधकतमत्व मानते हैं, किन्तु योगि प्रभृतिवत् स्वप्रयत्न को साधकतमत्व नहीं मानते हैं। (३२८) जो श्रीकृष्ण, ज्ञान योगादि को, परम फलरूप मुक्ति निज द्वेषी दैत्यवृन्द को प्रदान करते हैं, एवं जो स्वयं को अनन्य शरण दास का अधीन करते हैं, उन श्रीकृष्ण के प्रति ही भक्ति ही मुख्यभक्ति है।

(३२९) समस्त जगत् के प्राण कोटि प्रेष्ठ एवं उपकारक श्रीकृष्ण—सेवापरायण भक्त का कुछ भी अभाव नहीं रहता है। श्रीकृष्ण—बाहर गुरु रूप में एव भीतर में चित्त स्फुरित ध्येयाकार रूप में भक्ति

विरोधी वासना नाश करके निजानुभव एवं प्रेमसेवा प्रदान करते हैं।

(३३०) निज भक्ति का अतिशयत्व का वर्णन श्रीकृष्ण स्वयं श्रीउद्धव के निकट किये हैं। कृपा पूर्वक भक्त के स्पर्द्धादि आशु विदूरित करने के निमित्त एवं अपने के प्रति अन्तर्मुखी कराने के निमित्त अन्तर्यामी रूप में स्वांश को भजन के परिवर्त्त में स्वभजन का उपदेश किये हैं। (३३१) अमलाशय व्यक्ति गण—मेरा श्रीकृष्ण रूप को ही समस्त भूतों के भीतर बाहर में असङ्गत्व एवं विभुत्व हेतु आकाशवत् पूर्ण रूप में दर्शन करते हैं। सर्वभूत में मेरा अस्तित्व दर्शनकारी व्यक्ति ही पण्डित है।

(३३२) सर्वभूत में श्रीकृष्णरूप भावनाकारी व्यक्ति का साहङ्कार स्पर्द्धा, असूया एवं तिरस्कार शीघ्र विनष्ट होते हैं। भगवद् दृष्टि साधन में सर्वत्र नमस्कार ही एवं सर्वत्र प्रतिपद में स्वाभाविक नव्यनव्य श्रीकृष्ण स्फूर्त्ति ही साधनावधि है। श्रीगोपालतापनी में प्रसिद्ध – नराकृति परब्रह्म रूप को सर्वत्र नव्य नव्य श्रीकृष्ण स्फूर्त्ति ही सर्वोद्‌र्ध्व उपासना है। श्रीमद्भागवत में वर्णित है – काय-वाक्य-मन के द्वारा सर्व भूत में श्रीकृष्ण रूप का अस्तित्व दर्शन करना ही सर्वश्रेष्ठ उपाय वा उपासना है।

(३३३) श्रीगीता में उक्त है—'तत्त्वज्ञान गुह्य है, अन्तर्यामी ज्ञान गुह्यतर है, श्रीकृष्ण मनस्त्वादि लक्षण एवं तदेक शरणत्व लक्षण श्रीकृष्णोपासना ही सर्वगुह्यतम है। श्रीकृष्ण भजन सर्वापेक्षा उत्तम होने के कारण, उनके अवतार का भजन की अपेक्षा भी सुतरां उत्तम है। (३३४) भय से भी श्रीकृष्ण भजन करने से उससे मोक्ष होता है, अत: व्यर्थत्व की सम्भावना नहीं है। जिस प्रकार कंसादि का। अतएव श्रीमदुद्धववत् श्रीकृष्णैकानुगत व्यक्तियों का साध्यत्व एवं साधनत्व में श्रीकृष्ण रूप ही परमोपादेय है। जैसे उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण वाक्य है—'मेरी प्राप्ति ही तुम्हारे पक्ष में चतुर्वर्ग फल लाभ है।

(३३५) श्रीउद्धव ने भी श्रीभगवच्चरणों में नित्य अचला भावभक्ति की प्रार्थना की है। (३३६) श्रीकृष्णदास्य ही पुरुषार्थ है। (३३७) श्रीगोकुल लीलात्मक श्रीकृष्ण भजन का माहात्म्यातिशय है। कारण पूतनादि शत्रु को भी धात्रयुचित गतिदान रूप परम शुभ स्वभाव अन्यत्र अवतार समूह में अप्रकटित है।

(३३८) श्रीगोकुल में भी श्रीमद् व्रजवधु के सहित रासादि लीलात्मक श्रीकृष्ण का परमवैशिष्ट्य वर्णन श्रीशुकदेव ने "विक्रीड़ितं" इत्यादि श्लोकों में किया है। परमप्रेष्ठ श्रीराधासम्वलित लीलामय तद्-भजन ही परमतमरूप में स्वत:सिद्ध है। श्रीराधाकृष्ण रहस्य लीला भजन में अधिकारी निर्णय—पौरुष विकारवत् इन्द्रिययुक्त व्यक्ति के द्वारा एवं पितृ पुत्र दास भावापन्न व्यक्ति के द्वारा स्वीयभाव विरोध हेतु रहस्य लीला उपास्या नहीं है। लीला का रहस्यत्व कहीं अल्पांश में कहीं सर्वांश मे है।

(३३९) निजानुभूत रहस्य का प्रकाश करना निषिद्ध है। रागानुगा मार्ग में भी श्रीगुरु के प्रसादलब्ध अथवा श्रीभगवान् के प्रसादलब्ध साध्यसाधन गत स्वीय सर्वस्वभूत जो कुछ रहस्य अनुभूत होता है, उसका प्रकाश किसी के निकट करना नहीं चाहिये।

(३४०) सिद्धिक्रम—प्रत्येक ग्रास में तुष्टि, पुष्टि, क्षुदपायवत् प्रत्येकवार का भजन में किञ्चित् प्रेम, भगवद्रूप की स्फूर्त्ति एवं कालान्तर में वितृष्ण होती है। अनुवृत्ति द्वारा भजन में बहुग्रास भोजी के परम तुष्ट्यादिवत् परम प्रेमादि उत्पन्न होते हैं। अभिधेय भक्ति के विषय में अन्य विशेष विशेष शास्त्र एवं महाजन रीति भी अनुसन्धेय है।

परिशिष्ट (१) परतत्त्व वैमुख्य विरोधी तत्साम्मुख्य ही अभिधेय है। अर्थात् परतत्त्व विषयक ज्ञानोत्पादक भगवदुपासना ही अभिधेय है। प्रयोजन भगवदनुभव है।

(२) ज्ञान साधन एवं योगादि द्वारा आंशिक परतत्त्व साम्मुख्य होने पर भी श्रवण कीर्त्तनादि लक्षण साक्षात् भक्ति ही अभिधेय है।

(३) साक्षाद् भगवत् साम्मुख्य ही मुख्य अभिधेय होने पर भी प्रायशः सर्वत्र ही प्रथम साधकवृन्द की भगवत् कथा में ही रुचि का उदय होता है। भगवद् भजनान्तर में रुचि की अपेक्षा भगवत् कथा में रुचि ही श्रेष्ठ है। भगवत् कथा में रुचि उत्पन्न होने से क्रमशः स्वतः ही भगवत् स्मरण एवं साम्मुख्य सिद्ध हो सकता है।

(४) मन्द भाग्ययुक्त मानव को कृष्ण कथा में रुचि लाभ हेतु सुगम उपाय—पुण्यतीर्थ निषेवण द्वारा पाप विदूरित होता है, एवं तीर्थ स्थान में भ्रमण वा अवस्थान हेतु महात्मावृन्द की दर्शन सम्भाषणादि लक्षण सेवा लाभ होती है। उससे तद्धर्म में श्रद्धा, अनन्तर उनसे भगवत् कथा श्रवणेच्छा, फलतः भगवत् कथा में रुचि का उदय होता है। महत् मुख से भगवत् कथा श्रुत होने से सहसा कार्य्यकरी होती है।

श्री श्रीकृष्णचैतन्यदेव प्रवर्त्तित भागवतीय भक्तितत्वरस पिपासु व्यक्तिवृन्द के पक्ष में अवश्य अवलोकनीय यह 'भक्ति सन्दर्भ' ग्रन्थ है।

श्रीजीव की वंशवल्ली

श्रीसर्वज्ञ (जगद्गुरु कर्णाटक नृपति, १२०३ शक)
|
अनिरुद्ध (नृपति, १२३८ शक)
|
हरिहर, रूपेश्वर
|
पद्मनाभ (जन्म १३०८ शक)
|
पुरुषोत्तम, जगन्नाथ, नारायण, मुरारि, मुकुन्ददेव
|
कुमारदेव
|
(३) श्रीसनातन (१३८६-१४७६), (४) श्रीरूप (१३९२-१४७६), (३) श्रीवल्लभ (अनुपम) (१३९५-१४३७)
|
श्रीजीव (१४३३-१५१८)

—श्रीहरिदास शास्त्री

नरेन्द्र सरोवर में सपरिकर श्रीमद् भागवती कथा श्रवणरत श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु
प्रवक्ता—श्रीलगदाधर पण्डित गोस्वामी ।

* श्रीश्रीगदाधर गौराङ्गौ जयतः *

——***——

* विषयसङ्कलन *

——***——

विषय	पृष्ठा
श्रीरूपसनातन प्रशास्ति –	१
ग्रन्थ प्राकट्य विवरण—	,,
श्रीभक्ति सन्दर्भ की अवतरणिका—	२
मायावृत जीव का संसार दुःख—	३–४
परतत्त्व का अनुभव—	५
पापमलिन चित्त में, शास्त्र एवं सद् गुरु में सद्बुद्धि हीनता—	७
अनादि संसार—दुःखरूप व्याधि की चिकित्सा—	८
माया द्वारा जीव का भय एवं उद्धार का उपाय—	९
ज्ञान कर्म निरपेक्ष श्रवण कीर्त्तनादि भक्ति द्वारा श्रीभगवद् भजन—	१०
ऐकान्तिक मङ्गल एवं भक्ति का स्वरूप गुण –	११
भक्ति योग से श्रीभगवत् स्वरूपादि ज्ञान एवं अन्यत्र वैराग्य—	१२
श्रीभगवत् कथा में प्रीति न होने से श्रममात्र लाभ—	१३--१८
तत्त्व जिज्ञासा ही जीव का प्रयोजन—	१९
श्रीभगवद् भक्ति ही मुक्ति—	२०
तत्त्व त्रिविध—ब्रह्म,--परमात्मा,--भगवान्,—	२१
ब्रह्म का लक्षण—	२२
परमात्मा का लक्षण—	,,
श्रीभगवान् का लक्षण |	,,
एक मात्र भक्ति से ही त्रिविध तत्त्व का साक्षात् कार—	२३
श्रीहरि तोषण ही वर्णाश्रमादि का फल—	२४
श्रीहरि के कथा श्रवण कीर्त्तनादि करना जीव का कर्त्तव्य—	२५
मन्द भाग्य के पक्ष में भगवत् कथा में रुचि का उपाय—	२६-२७
श्रीकृष्णकथा श्रवण से कामादि वासना निवृत्ति—	२८
श्रीभगवत् साक्षात् कार हेतु जीव की योग्यता—	२९-३०
उस विषय में सदाचार प्रमाण—	३१
श्रीभगवद् भक्ति में सदाचार प्रमाण—	,,
अन्य देवता का भजन –	३२-३४
सर्व शास्त्र तात्पर्य्य एवं समन्वय—	३५--३६
श्रीभागवत आविर्भाव हेतु भक्ति का अभिधेयत्व निर्णय—	३७
भक्ति संसर्गी व्यतीत ज्ञानकर्म की व्यर्थता—	३८-३९

विषय	पृष्ठा
कर्मादि अनादर पूर्वक श्रीहरि भक्ति का उपदेश—	४०
भक्ति ही अभिधेय वस्तु—	४१-४२-४७
सामान्य भक्ति स्थापन—	,,
भक्ति योग ही सर्व वेद सिद्ध—	,,
स्थूल धारणामार्ग का परिहार—	,,
श्रीभगवद् भक्ति योग का अभिधेयत्व—	४८
अन्य देवता अर्च्चन कारी को भगवद् भक्त सङ्ग से भक्तिलाभ—	,,
भक्ति योग का अभिधेयत्व दृढ़ीकरण—	,,
श्रीभगवत् कथा विमुख व्यक्ति का परिचय—	,,
भक्ति का अभिधेयत्व में प्रमाण—	४९--६६
भक्ति की सफलता सम्पादन हेतु ज्ञानोपदेश—	,,
श्रीरुद्र गीत में भी भक्ति का अभिधेयत्व—	६७
श्रीनारद कर्त्तृक अन्वय व्यतिरेक द्वारा भक्ति का अभिधेयत्व निर्णय—	,,
श्रीअच्युत आराधना से समस्त देवता की आराधना—	६८--७२
श्रीऋषभ देवकृत पुत्र शिक्षण में भी श्रीअच्युत आराधन की श्रेष्ठता—	७२
चित्र केतु के प्रति श्रीसङ्कर्षण देव का उपदेश वाक्य—	७३
श्रीप्रह्लाद कर्त्तृक उपदेश में श्रीभगवद् भजन की श्रेष्ठता—	,,
आत्म विद्यादि की सफलता—	७५
श्रीभगवत् प्रीति से आनुषङ्गिक कर्म बीजनाश—	७६
श्रीभगवद् भक्ति प्राप्ति का उपाय—	७७
श्रीभगवद् भक्ति ही समस्त पुरुषार्थ के हेतु—	७८
श्रीजयन्ती नन्दन उपाख्यान में भी भगवद् भजन ही आत्यन्तिक मङ्गल—	
श्रवण कीर्त्तनादि मात्र ही भक्ति—	८२
योगाभ्यासादि व्यतीत केवल भक्ति द्वारा ही मनोनिरोध—	
कर्म्मादि त्याग पूर्वक साक्षाद् भक्ति का विधान—	८७
काम्य कर्म्म की आवश्यकता—	८८
व्यतिरेक मुख से श्रीभगवद् भजन की कर्त्तव्यता का निर्द्धारण—	९१
चतुर्युग में श्रीभगवद् भजन—	९२
श्रीउद्धव को लक्ष्य करके अन्य के प्रति उपदेश—	९५
भक्ति योग का ज्ञान जनकत्व—	९६
श्रीभगवल्लीलाशून्य वैदिक वाक्य का अनादर—	९८--१००
भक्ति के द्वारा ही स्वरूपावबोधक ज्ञान सिद्ध होता है—	१०१
श्रद्धा भक्ति का उपदेश—	१०२
भक्ति मार्ग में प्रवृत्ति के हेतु—	१०३
श्रीभगवान् का स्वरूप विज्ञान—	,,
भक्ति का मुख्यत्व—	१०४

विषय	पृष्ठा
माया मोहित जन गण के पक्ष में विविध प्रकार पुरुषार्थ साधन—	
भक्ति का ही अवान्तर व्यापार ज्ञान—	
ज्ञान कर्म का अनादर द्वारा भक्ति का अभिधेयत्व—	
भक्ति योग की श्रेष्ठता---	
भक्ति योग के द्वारा ज्ञान वैराग्यादि का फल लाभ—	
बुद्धिमान् व्यक्ति के चातुर्थ का फल—	११२--११३
अनित्यदेह के द्वारा नित्य लोक प्राप्ति विषय में दृष्टान्त हरिश्चन्द्रादि—	११४
अन्यान्य भक्ति साधन में भी श्रवण पूर्विका प्रवृत्ति—	११५--११८
भक्ति निष्ठा की स्थिरता हेतु ज्ञानोपदेश—	
ब्रह्म ज्ञान के पश्चात् श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तनादि में---	
परीक्षित् की अनुज्ञाप्रार्थना—	११९--१३०
ज्ञान एवं विज्ञान सिद्धि--श्रीभगवत्पादारविन्द दर्शन के अन्तर्भूत—	
ज्ञान कर्म्मादि की अपेक्षा श्रीभगवत् कीर्त्तनादि का आदर—	
कीर्त्ति के निमित्त ही वर्णाश्रमादि आचार—	
श्रीमद् भागवत में गुरु शिष्य भाव से शिक्षा वाक्य में भक्ति का ही अभिधयेत्व--	१३१
कर्म्म से अधिक फललाभ हेतु नाम ग्रहण से अपराध—	
श्रीमद् भागवत में विधि मुख से भक्ति का ही अभिधेयत्व—	
शास्त्र निर्द्दिष्ट वर्णाश्रमादि आचरण का फल भक्ति—	
अन्यान्य पुरुषार्थ साधनों का भक्ति मूलकत्व—	
समस्त साधनों का जीवन, भक्ति—	
भक्ति प्रभाव से कामना त्याग —	
व्यतिरेक मुख से कर्म का अनादर—	
भक्ति में ही शास्त्र का तात्पर्य—	१३२
भगवच्चरणार विन्द विमुख ब्राह्मण से हरिभक्त चण्डाल श्रेष्ठ—	१४५
श्रीभगवान् में अर्पित कर्म्म के अनादर द्वारा भक्ति का अभिधेयत्व—	१४५
भक्तियोग व्यतीत ज्ञान असिद्ध—	१५०
अन्य देवताश्रय का अनादर—	१५९
वैष्णव रूप में श्रीशिव का पूजन--	१६१
स्वतन्त्ररूप में श्रीशिव की आराधना से दोष—	१६५
प्रतिमादि में शिलाबुद्धि—	१७९
सर्वभूतों में समादर ही वैष्णव लक्षण—	१८१
कनिष्ठाधिकारी की श्रीविग्रह सेवा—	१८२-१९१
प्रतिमा अर्च्चन विषय में श्रीकपिल देव का उपदेश—	"
अवज्ञा मात्र ही दोषावह—	"
अद्वेष्टा के प्रति भगवत् प्रसन्नता	"
ईश्वर ज्ञानाभाव हेतु सर्वभूतों में अनादर--	"

विषय	पृष्ठ
शास्त्र में श्रद्धा--कर्म्म सापेक्ष,--प्रतिमा पूजन की नित्यता—	,,
प्रतिमा पूजन का प्राण—सर्वभूतों में दया—	,,
प्राणि विवेचना में सम्मानातिशय—	,,
जीव के प्रति दया मुख्या भक्ति नहीं—भगवच्चर्चन ही मुख्या भक्ति—	,,
अतिहिंसा निषिद्ध, सेवा हेतु पुष्पादि वचन का विधान—	,,
देवगण वाञ्छित मनुष्यजन्म—	
कृष्ण विमुख सिद्ध मुनि का अधः पतन—	१९२
भागवत् धर्म गोपनीय, विशुद्ध एवं दुर्बोध्य—	१९२
श्रीभगवद् भक्ति की सर्वोर्द्धता —	१९६
सर्व वर्णाश्रमी का श्रीकृष्णोपासना कर्त्तव्य —	१९७
भक्ति विहीन की अविशुद्धभक्ति—	२०३
श्रीभगवदनादर से जीवन मुक्त की अधोगति—	२०४
कर्म्माशय निःशेष रूप से नाश होने पर ही भक्ति का अनुष्ठान—	२०५
षड् विध लिङ्ग द्वारा भक्ति का अभिधेयत्व—	२०७
भक्ति का परम धर्मत्व---विधि एवं निषेधमुख से—	२०८
सर्वाधिकारी के पक्ष में भक्ति ही अभिधेय—	२१९
साचार में एवं दुराचार में—	२२०
ज्ञानी एवं अज्ञानी में—	,,
विरक्त में एवं विषयासक्त में—	२२१
मुमुक्षु एवं मुक्त में—	,,
सिद्ध एवं असिद्ध में—	,,
श्रीभगवत् पार्षदत्व प्राप्ति में	,,
नित्य पार्षद में	,,
समस्त इन्द्रिय में—	,,
सर्व द्रव्य में—	,,
सर्व कार्य्य में	,,
सर्व फल में—	,,
सृष्टि के आदि में	२२५
सर्वावस्था में—	२२६
भक्ति हेतु श्रीभागवत पुराणाविर्भाव—	२३२
श्रीव्यास देव की समाधि में भक्ति का ही परम मङ्गलत्व—	२३४
श्रीव्यास देव का स्वगत विचार—	,,
भक्ति उपदेश हेतु श्रीभगवान् का उत्कर्षवर्णन—	२३५
शुद्धा भक्ति लाभ हेतु मिश्रा भक्ति का उपदेश—	
भक्ति का अशुभ हारित्व—	२३७
भक्ति का सर्व विघ्न निवारकत्व—	,,

विषय	पृष्ठा
दुष्ट जीवादि भयनिवारकत्व—	२४१
तापत्रय जनित बाधा की अप्राप्ति	२४२
भक्ति का पाप विनाशित्व—	२४३
अप्रारब्ध हारित्व—	"
प्रारब्ध पाप हारित्व-	२४७
वासना हारित्व-	२५०
अविद्या हरत्व-	२५१
सव प्रोणन हेतुत्व—	२५२
भक्ति का निर्गुणत्व प्रतिपादन हेतु समस्त कर्म्मों का सगुणत्व—	२५४
भगवज् ज्ञान का निर्गुणत्व—	२५५--२६५
ब्रह्म ज्ञान का सगुणत्व—	"
ज्ञान रूपा भक्ति का निर्गुणत्व—	"
क्रिया रूपा भक्ति का निर्गुणत्व—	२६६--२६७
समस्त भगवत् कार्य्य का निर्गुणत्व—	"
भक्ति की प्रवृत्ति हेतु मूता श्रद्धा का निर्गुणत्व	"
भक्ति का स्वप्रकाशत्व—	"
परमसुख रूपत्व—	२६८
भगवद् विषयक रति प्रदत्व—	२६९
नित्य सुख स्वरूप श्रीभगवान् में भक्ति सुख—	२७१
पूर्णकाम श्रीभगवान् का तोषण—	२७२
जीव में स्वरूप शक्ति भक्ति की अभिव्यक्ति—	२७४
भक्ति में ही भगवान् की अनुभूति---	२७५
भगवत् प्रापकत्व—	२७६
मन का अगोचर फल दातृत्व—	२७७
भक्ति योग साध्य एवं साधन--	२८०
भगवदर्पित लौकिक कार्य्य का भी परम धर्म्मत्व--	२८१
भक्त्याभास का पाप हारित्व--	२८४
भाग्यवान् जीव कर्त्तृक मातृगर्भ में भगवतस्तुति--	२९१
भक्त्याभास का विष्णु पद प्रापकत्व--	२९६
नाम में अर्थवाद कल्पना से दोष--	२९८
अपराध स्थल में नाम ग्रहण से विलम्ब में फल प्राप्ति--	२९९
नामापराधी का पुनः पुनः नाम ग्रहण कर्त्तव्य---	३०२
सरल व्यक्ति के प्रति भक्त का अनुग्रह--	३०५
कुटिल विज्ञ व्यक्ति के प्रति अननुग्रह--	३०६
अश्रद्धा--	३०६
आधुनिक भक्त में विश्वास न करना--	३०८

विषय	पृष्ठा
अन्य वस्तु में अभिनिवेश हेतु निष्ठाच्युति—	३०९
उत्कण्ठा बुद्धि हेतु भक्त का प्रारब्धकर्म प्राबल्य—	३०९
भक्ति शिथिलता—	३११
जन्मान्तरीय पुण्यबल से अजामिल कर्त्तृक नाम ग्रहण---	३१३
प्रथम नाम ग्रहण से ही अजामिल का पापक्षय---	३१४
अधिकारानुसार फल प्राप्ति-	३१७
सञ्जात प्रेम का फलोदय---	३१७
भक्ति व्यतीत अन्य साधन तुच्छ---	,,
ऐकान्तिकी भक्ति-	,,
श्रीकृष्ण एवं भक्त एतदुभय का कामना शून्यत्व---	३२१
निष्काम भक्ति में श्रीहरि की प्रीति—	३२५
अकिञ्चना भक्ति का सर्वशास्त्रसारत्व—	३२६
अकिञ्चना भक्ति का सर्व श्रेष्ठत्व—	,,
ज्ञान कर्म एवं भक्ति में अधिकार हेतु भङ्ग सङ्ग से मायानिवृत्ति—	३३२
विषय भोग के मध्य में भी कीर्त्तनादि में आसक्ति—	३३३
श्रद्धा ही भक्ति का कारण--	३३४
अज्ञान कृत पाप नाश हेतु श्रीकृष्ण कृपा—	३३५
श्रद्धोत्पन्न के पूर्व पर्य्यन्त काम्य कर्मानुष्ठान-	३३६--३४१
स्नानादि की आवश्यकता--	,,
कर्म्म का भी भगवत् साम्मुख्य--	,,
स्वीय अधिकारानुसार अवस्थिति-	,,
ज्ञान एवं भक्त्युदय होने के पूर्व पर्य्यन्त काम्य कर्मानुष्ठान--	३४२--३६२
ज्ञान से ब्रह्मानुभव--	,,
भक्ति विशेष से परमात्मा का अनुभव--	,,
भक्ति द्वारा भगवान् का अनुभव---	,,
भक्त प्रशंसा द्वारा भक्ति की सर्वोद्ध्र्वता---	,,
एकान्ति भक्त की श्रेष्ठता---	३६२
अकिञ्चना भक्ति का अनुष्ठान--	,,
प्रणव ही महावाक्य--	३६६
संसार नाश–सत्सङ्ग-	३६७
सत्सङ्ग का हेतु-	३७०
सिद्ध ज्ञानी, भक्त-	३७१-३८७
भक्त सिद्ध त्रिविध-	३८८
उत्तम भक्त-	३९३-४०८
मध्यम भक्त-	,,
कनिष्ठ भक्त-	,,
उत्तम भक्त का विशेषलक्षण—	,,

विषय	पृष्ठा
तापादि संस्कार —	४०९
नवेज्या कर्म्म—	"
अर्थ पञ्चकविवरण—	४१०
साधन तारतम्य से भक्त तारतम्य—	४१३-४१४
कनिष्ठ मिश्र भक्त—	"
अमिश्र मध्यम भक्त	४१५-४२३
वैष्णव वृन्द, सत् एवं महत् नाम से अभिहित—	
श्रीभगवदाज्ञापालन हेतु वैष्णव वृन्द के द्वारा वर्णाश्रमादि धर्मानुष्ठान—	४२४-४२९
विचार प्रधान एवं रुचि प्रधान वैष्णव वृन्द का भजन पथ—	
शिक्षागुरु अनेक होने पर भी भजन शिक्षा गुरु एक व्यक्ति—	
रागादि दोष शून्य श्रवण गुरु—	
तादृश श्रवण गुरु के अभाव से बहु श्रवण गुरु का आश्रय—	
रुचि प्रधान वैष्णव वृन्द के श्रवणादि—	४३०-४३२
विचार प्रधान वैष्णव वृन्द का श्रवण—	
मनन—	
मनन हेतु श्रद्धा—	
जड़कर्म्म एवं देवता समूह फल दाता नहीं' परमेश्वर ही फल दाता—	
श्रीविष्णु ही परमेश्वर—	
भजन श्रद्धा—	
श्रवण गुरु एवं भजन शिक्षा गुरु का एकत्व—	४३३
मन्त्र गुरु एक व्यक्ति	४३४
अवैष्णव गुरु त्याग—	४३५-४३७
श्रवण गुरु के सङ्ग से शास्त्रीय विज्ञानोत्पत्ति—	"
शिक्षा गुरु की आवश्यकता—	
मन्त्र गुरु की आवश्यकता—	
कर्म्मिवृन्द की गुरु में भगवद् दृष्टि—	४३८
पारमार्थिक व्यक्ति की गुरु में भगवद् बुद्धि—	"
कतिपय शुद्ध भक्त की, गुरु में शिव में एवं श्रीभगवान् में अभेद बुद्धि—	४३९
निर्विशेष एवं सविशेषमय भेद से साम्मुख्य द्विविध—	४४०-४४२
ज्ञान का लक्षण—	
ज्ञान मार्ग के साधक वृन्द का निर्विशेष ब्रह्मानुभव—	
अहं ग्रहोपासना —	
भक्ति का स्वरूपलक्षण एवं तटस्थलक्षण—	४४३
आरोपसिद्धा, सङ्गसिद्धा, स्वरूपसिद्धा भेद से भक्ति त्रिविध—	४४६
अकैतव एवं सकैतव भेद से उक्त भक्ति त्रिविध—	४४७
विधि द्वारा कृत--एवं स्वभाव वशत: अनुष्ठित कर्मार्पण भक्ति—	४४८
वैदिक कर्मार्पण की प्रशंसा—	४५०-४५१

विषय	पृष्ठा
भागवत धर्म में समग्र अङ्ग का क्रमशः अनुष्ठान न होने से भी फल प्राप्ति—	
श्रीभगवान् में कर्मार्पण ही तापत्रय का औषध—	४५३
संसार हेतु कर्म एवं सामग्री भेद से त्रितापनाश—	,,
श्रीवासुदेव में प्रीति निमित्त भरत का कर्मानुष्ठान—	४५४
श्रीभगवत् प्रीणन रूप एवं उस में त्याग रूप भेद से कर्म्मार्पण द्विविध—	४५६
परम भक्त वृन्द कर्मार्पण द्वारा भगवत् प्रीति की प्रार्थना—	,,
कर्म ज्ञानादि मिश्रा सङ्गसिद्धा भक्ति—	४६१
कैवल्य काम भक्ति—	४६३
ज्ञानमिश्रा सङ्गसिद्धा भक्ति—	४६४--४६८
भक्ति कामना से कर्म मिश्राभक्ति—	
ज्ञानमिश्रा भक्ति—	
केवल स्वरूपसिद्धा भक्ति—	
सकामा तामसी भक्ति—	
भक्ति राजसी वा तामसी नहीं, गुणवान् व्यक्ति ही राजसिक तामसिक—	
सकामा राजसी भक्ति--	
कैवल्य कामा सात्त्विकी भक्ति—	४६९-४७४
वैधी एवं रागानुगा भेद से भक्ति द्विविध—	४७५--४७६
वैधी—	
अहैतुक भक्ति योग प्राप्ति का उपाय—	
वैधी भक्ति का भेद—	
शरणापत्ति—	४७७
शरणापत्ति षड् विधा—	४७८
शरणा पत्ति की प्रशंसा—	४७९
श्रीगुरु एवं वैष्णव वृन्द की प्रसन्नता से अनर्थ निवृत्ति—	४८४
श्रीगुरु सेवा से श्रीभगवान् की सन्तुष्टि—	,,
श्रीगुरु की आज्ञा से अन्य वैष्णव की सेवा—	४८५
वैष्णव विद्वेषी गुरु परित्याज्य—	४८६--४९१
तिलकादि चिह्न धारी वैष्णव वृन्द की सेवा—	
प्रसङ्ग रूपा भक्त सेवा—	
श्रीभगवद् वशी करण मन्त्र—	४९१
वशी करण में दृष्टान्त—	४९२--४९५
मुख्य वशी करण—	४९६
अज्ञान से भी सत्सङ्ग से कृतार्थता—	४९९
परिचर्य्या रूपा भक्त सेवा—	,,
महा भागवत में सेवा का सिद्ध लक्षण—	५००-५१०
वैष्णव मात्र की आराधना—	
श्रवण—	५१०

विषय	पृष्ठा
नाम श्रवण—	,,
रूप श्रवण—	,,
गुण श्रवण—	
लीला श्रवण—	५१६
भगवान् की लीला द्विविधा, सृष्ट्यादि रूपा एवं लीलावतार रूपा—	५१६--५१९
भगवान् के चरित्र वर्णन हेतु श्रीभागवत पुराण का आविर्भाव—	,,
भक्त वृन्द के नामादि श्रवण--	५२०
महत् मुखोच्चारित श्रवण परम सुखद—	५२३
श्रवण कीर्त्तनादि का क्रम—	५२५
श्रीभागवत श्रवण—परम श्रेष्ठ—	५२४--५३३
नाम कीर्त्तन का क्रम–	
नाम सङ्कीर्त्तन ही--साध्य एवं साधन–	
उच्चैःस्वर से नाम सङ्कीर्त्तन ही प्रशस्त—	
नामापराध दशविध–	५३४-५४४
रूप कीर्त्तन—	
गुण कीर्त्तन–	
लीला कीर्त्तन—	५४५--५४८
कीर्त्तन ही ध्यान यज्ञादि का फल–	५४९
कीर्त्तन की महिमा—	
सत्यादि युग के प्रजावृन्द की कलि में जन्म प्रार्थना—	५५१
समस्त युगों में ही कीर्त्तन की समान सामर्थ्य–	
कलि में कीर्त्तन के सहित अन्य साधन का अनुष्ठान—	
नाम कीर्त्तन प्रचार में भगवत् परायणत्व—	५५५
स्मरण—	५५७-५५८
नाम स्मरण–रूप स्मरण—	
स्मरण पञ्चविध—	५५९
पाद सेवा—	५६१-५६४
तुलसी सेवा	५६५
अर्च्चन—	५६६
दीक्षा का प्रयोजन—	५६७
दरिद्र के समान सम्पत्ति शाली गृहस्थ स्मरणनिष्ठ होने से वित्त शाठ्य दोष—	५६८
मन्त्र से नाम में अधिक सामर्थ्य होने पर भी मन्त्र की आवश्यकता—	५७१
लोक संग्रह पर गृहस्थवृन्द की सन्ध्योपासनादि के सहित भगवत् पूजा—	५७४
सिद्ध व्यक्ति को भी लोकाचार पालनीय—	
श्रीभगवान् की पीठावरण पूजा में श्रीभगवान् के स्वरूपशक्त्यात्मक गणेश दुर्गादि—	५७६

विषय	पृष्ठा
भूतादि की पूजा अकर्त्तव्य—	५७६-५९२
श्रीभगवान् के वाम प्रदेश में समष्टि रूप में श्रीगुरु पूजन—	
आवरण पूजा में श्री राधादि के नामान्तर श्रीरुक्मिण्यादि की पूजा—	
द्वारदेश में जो गङ्गा वह मानसगङ्गा—	
शुद्ध भक्त वृन्द के पक्ष में भूतशुद्धि—	
भगवद् धाम गत ध्यान ही मुख्य—	
हृदय कमल में योगि गण के पक्ष में ध्यान,	
उस में तेजोमय प्रतिमा स्वरूप में भगवान् में स्थिति—	
शूद्रादि पूजित प्रतिमा पूजन निषेध वचन--अवैष्णवपर—	
प्रतिमा पूजन की आवश्यकता—	
एकादश प्रकार पूजास्थान—	५९३--६०१-३
ऋतुचर्य्या—	
फल द्वारा अर्च्चन की प्रयोजनीयता—	
अर्चन में अधिकारि निर्णय-	
अर्च्चन के अङ्ग समूह--	
जन्माष्टमी—	
एकादशी—	
अनाहार शब्द से वैष्णव वृन्द के पक्ष में महाप्रसादान्नपरित्याग—	६०४
माघमास—	६०५
वर्जनीय अपराध समूह—	६०८-६१०
महत् का अनादर,--सर्वनाशकर—	
प्रमाद वशतः अपराध उपस्थित होने पर श्रीभगवत् प्रसादन कर्त्तव्य—	
वन्दन—	६११
दास्य—	६१२
दास्य के सम्बन्ध में समस्त भजन महत्तर—	६१४-६१६
सख्य—	,,
सख्यात्मिका भक्ति—	,,
आत्मनिवेदन—	६१७-६२०
रागानुगा में भक्ति—	६२१--६३२
रागानुगा में मानसावेश का प्राधान्य—	
आवेश की सामर्थ्य—	
काम का पाप राहित्य--	
भावमार्ग प्रसङ्ग में कथित वैर एवं द्वेषभाव निषिद्ध-	६३३--६६६
रागानुगा का विषय---	६६७-६७१
श्रीकृष्ण भजन माहात्म्य--	६७२
भजन सिद्धि का क्रम—	६८१

❋ श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः ❋

श्रीश्रीभक्तिसन्दर्भ-धृत-प्रमाणग्रन्थानां

साङ्केतिक-चिह्नानि

अगस्त्य-संहिता	अ सं, अगस्त्य सं	नारदपुराणम्	नारद
अग्निपुराणम्	अग्नि	नारायणव्यूह-स्तवः	ना स्त
अमरकोषः	अमर	निरुक्तम्	निरुक्त
आगमः	आ	नृसिंहतापनी	नृ ता
आदिवराह-पुराणम्	आ वराह	नृसिंहपुराणम्	नृ पु, नृसिंह
आलमन्दारुस्तोत्रम्	आल स्तो	पद्मपुराणम्	पद्म
इतिहास-समुच्चयः	इ समु	पद्यावली	पद्या
उपसंहारः	उप	पुष्पिका	पु
ऋग्वेद-संहिता	ऋक्	पूर्व-मीमांसा	पूर्व
ऐतरेयोपनिषत्	ऐत	ब्रह्मपुराणम्	ब्रह्म
कठोपनिषत्	कठ	ब्रह्मयामलम्	ब्र या
कात्यायनसंहिता	का सं	ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणम्	ब्रह्मवै
कूर्मपुराणम्	कूर्म	ब्रह्मसंहिता	ब्र सं
गरुड़पुराणम्	गरुड़	ब्रह्मसूत्रम्	ब्र सू
गीता	गी	ब्रह्माण्डपुराणम्	ब्रह्माण्ड
गोपालतापनी	गो ता	भक्तिरसामृतसिन्धुः	भ र सि
गौतमीयतन्त्रम्	गौत	भक्तिविवेकः	भ वि
चिन्तामणिदीक्षितः	चिन्ता	भविष्यपुराणम्	भविष्य
छन्दोगपरिशिष्टम्	छ प	भागवतम्	भा
जाबाल-संहिता	जा सं	भावार्थ-दीपिका	भा दी
तत्त्वसागरः	त सा	मङ्गलाचरणम्	म
तन्त्रम्	तन्त्र	मत्स्यपुराणम्	मत्स्य
तैत्तिरीयोपनिषत्	तै	मनुसंहिता	मनु
त्रैलोक्यसम्मोहन-तन्त्रम्	त्रै स त	मन्त्रदेव-प्रकाशिका	म प्र
नामकौमुदी	ना कौ	महाभारतम्	म भा
नारदपञ्चरात्रम्	ना प	मुक्ताफल-टीका	मु टी
मुण्डकोपनिषत्	मु	बृहन्नारदीय-पुराणम्	बृ नारद
मोक्षधर्मः	मोक्ष	वैष्णवचिन्तामणिः	वै चि
यजुर्वेदः	यजुः	वैष्णवतन्त्रम्	वै त
यामलम्	याम	शतपथ-श्रुतिः	शत
रामायणम्	रा, राम	शब्दकोषः	शब्द

रामार्चन-चन्द्रिका	रा च	शिक्षाष्टकम्	शिक्षा
लघुभागवतम्	ल भा	श्वेताश्वतरोपनिषत्	श्वे
लिङ्गपुराणम्	लिङ्ग	सनत्कुमार-संहिता	स कु सं
वराहपुराणम्	वराह	सर्वज्ञमुनिवाक्यम्	स मु
वामनकल्पः	वा क	सहस्रनामस्तोत्रम्	सहस्रनाम
वामनपुराणम्	वामन	सौपर्ण-श्रुतिः	सौपर्ण
वासनाभाष्यम्	वा भा	सौरपुराणाम्	सौर
विष्णुधर्मः, विष्णुधर्मोत्तरम्	वि ध	स्कन्द-पुराणम्	स्कन्द
विष्णुपुराणम्	वि पु	हयशीर्ष-पञ्चरात्रम्	हय प
विष्णुयामलम्	वि या	हरिभक्तिविलासः	ह भ वि
विष्णुरहस्यम्	वि र	हरिभक्तिसुधोदयः	ह सु, हरि सु
वृहदारण्यकोपनिषत्	वृ	हरिवंशम्	हरि

श्रीश्रीगदाधर गौराङ्गौ जयतः

❀ श्रीश्रीभक्तिसन्दर्भस्य ❀

मातृकाक्रमेण प्रतिचरणगत-श्लोकप्रतीकानामनुक्रमणिका

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः	श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
अकर्त्तुः सम-	भा	२६३	अजस्य च भवस्य	भा	६१३
अकामः सर्वकामो	भा	९८ अनु, ११५ अनु,	अजस्रभावा	भा	१५७
		१२१ अनु, १६५ अनु, २१६ अनु, ४९	अजामिलोऽप्य-	,,	४८५
अकामादपि	बृ नारद	४०१	अजितरुचिर-	,,	१८७ अनु
अकारश्चाप्युकारश्च	पद्म	५१४	अज्ञानं यदतो-	गी	१०५ अनु
अकारेणैव चोच्यते	पद्म	५१६	अज्ञानञ्च निरस्तं	भा	१४७
अकारेणोच्यते	पद्म	५१५	अज्ञानां कर्म-	गी	५०२
अकालमृत्यु-	बृ नारद	५००	अज्ञानिनः सुर-	गरुड़	१०३६
अकिञ्चनप्रार्थ्य-	भा	८५९	अज्ञेषु ताप-	भा	१४३
अकिञ्चनानां	भा	४६०	अञ्जः पुंसा-	भा	६३५
अकुर्वन् याति	वि र	९४५	अञ्जसा विन्दते	भा	७४ अनु
अक्रीतलभ्येषु	नृसिंह	२०५	अत आत्यन्तिकं	भा	५९ अनु
अक्रूरस्त्वभिवन्दने	...	४७७	अत ऊर्द्ध्वं	गी	१९०
अक्रूरे क्रूरके	भा	१०५३	अतः कलौ	ब्रह्मवै	८३१
अक्षरं ब्रह्म	गी	१७६ अनु	अतः पुंभि-	भा	३ अनु, १९
अक्षीणवासनं	भा	१९७	अतः पृच्छामि	भा	१५०
अखण्डरस-	ना प	८९७	अतिथौ हूयते	भा	१०३
अग्निपुत्रा	कूर्म	१०२९	अतो गुरुं	आ	८९९
अग्निहोत्रादिना	भा	२३८ अनु	अतो वै कवयो	भा	३ अनु, ९९ अनु,
अग्नेर्योनि-	भा	६६४			१४० अनु, २८
अघं धुन्वन्ति	भा	३०६, ३४७	अत्र सर्गो	भा	११५ अनु
अघच्छित्	वै चि	८४२	अत्र स्याद्रस-	हय प	५७१
अङ्गक्रियेष्वपूर्वं	भा	२२२ अनु	अत्रानुवर्ण्यते-	भा	८६ अनु, १४०
अङ्गरागार्पणे	,,	१०२५	अथ चित्तं	गी	१९१
अङ्गस्यास्मत्पितुः	,,	६१२	अथ भागवतं	भा	५४२
अङ्गिरा भगवानृषिः	,,	५३३	अथ भागवता यूयं	भा	१८९ अनु, २१९
अचिरान्मुच्यते	,,	१०३	अथ मां सर्व्व-	भा	२५७
अच्युतप्रिय-	,,	९९१	अथर्व्वाङ्गीरस-	नृ ता	१०६ अनु

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
अथवास्य पदा-	भा	१५९, ७६२
अथात आनन्द-	भा	१०४७
अथानघाङ्घ्रे-	भा	५३१
अथापि भूमन्	भा	१७६ अनु
अथापि मे दुर्भगस्य	भा	४४९
अथैतत् परमं	भा	२४२ अनु, १२२
अथैतदप्यशक्तो-	गी	१९३
अथैनं मापनयत	भा	४५३
अथो न पश्यन्त्यु-	,,	५२५
अथो महाभाग	,,	३२७
अदादन्यत्र भगवान्	स्कन्द	८११
अदोग्धा धर्म्मं	भा	२६२
अद्य प्रभृति	स्कन्द	९५२
अद्वेष्टा सर्व्व-	गी	२०० अनु
अधर्माद्यचतुष्कन्तु	ना प	२८६ अनु
अधर्म्मशीलस्य	भा	५२३
अधियज्ञोऽहमेवात्र	गी	१७६ अनु
अधीतवान्	भा	७८८
अधीतास्तेन	वि ध	८१५
अध्यगान्महदा-	भा	५४६
अनन्तचरणेन	भा	३२० अनु
अनन्तरं त्ववहि-	,,	५३६
अनन्यचेताः	गी	५०८
अनन्यनिमित्त-	भा	२३४ अनु
अनन्यविषया	,,	७४
अनन्यवृत्त्यानु-	,,	५८६
अनन्यशरणं-	भा	४४१
अनन्याश्चिन्तयन्तो	गी	४५७, ४९९
अनयोस्तीर्थयो-	आ वराह	९८०
अनर्थोपशमं	भा	११४ अनु
अनादिनिधनो	,,	१४२
अनाशीः काम	,,	५०५
अनिच्छयापि	ब्रह्मवै	३९९

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
अनिन्दामन्यत्र	भा	१०६ अनु
अनिमित्तनिमित्तेन	भा	६६२
अनिवेद्य तु भुञ्जानः	ब्रह्माण्ड	९६१
अनिवेद्य न भुञ्जीत	ब्रह्माण्ड	९६०
अनीहं हरि-	भा	४६४
अनीहो मितभुक्	भा	५७९
अनुक्रमिष्ये	,,	७६८
अनुग्रहायेह	,,	५२३
अनुग्रहेणाशृणवं	,,	६१०
अनुजानीहि मां	भा	१४५
अनुपनीत-	नृ ता	१०६ अनु
अनु शर्व्वाव-	भा	१०६ अनु
अनेकजन्मजनित-	ब्रह्मवै	६
अनेकजन्मसंसार-	वि ध	५२६
अन्तं गतोऽपि	गरुड़	२८४
अन्तरायतया-	भा	१६८ अनु
अन्तर्व हिःस्नान	,,	५३१
अन्ते नारायण-	भा	४५१
अन्तेवास्युत्तरा-	,,	६२२
अन्नपानाद्य-	ब्रह्माण्ड	९६०
अन्यत्र चैष एवं	भा	१०७३
अन्यत्र धर्म्मा-	कठ	१८० अनु
अन्यत्र ब्राह्मण-	भा	७३९
अन्यत्र भूताच्च	कठ	१८० अनु
अन्यत्राच्युत-	भा	७३९
अन्यथा म्रियमाणस्य	,,	४५०
अन्यनाम्नां	वामन	८१०
अन्यायेन शृणोति	ना प	७१६
अन्ये च देवा	भा	२१२
अन्वयव्यतिरेका-	भा	२९५
अपराधसहस्राणि	स्कन्द	९७६, ९७८
अपराधसहस्रेण	स्कन्द	९७४
अपराधान् जहाति	आ वराह	९८०

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
अपरीक्ष्योपदिष्टं	ब्रह्मवै	६०६
अपरेयमित-	गी	५७६, ५८९
अपरे हत-	भा	१०४०
अपश्यतामात्म-	,,	४०
अपापमसुरः	भा	३३९
अपारमभिधावताम्	वि ध	९८४
अपि चेत् सुदुरा-	गी	१६५ अनु, १७२-७३ अनु, २०० अनु, २४७ अनु, ३१२ अनु, ३०४
अपि तुल्यार्थ-	भा	१३४ अनु
अपि धर्म्माय	पद्म	३९४
अपि पातक-	वृ नारद	८५३
अपुत्रोऽपि स वै	स्कन्द	१००२
अपूज्य भोजनं	वि ध	८७२
अप्यजितरुचिर-	भा	२७९ अनु
अप्युत्तमाङ्गं	,,	५६
अप्रमत्तो	,,	५८०
अप्राप्य मां	गी	२०७
अप्रारब्धफलं	पद्म	३५३
अभक्तो नरके	स्कन्द	३९३
अभक्ष्येण समं	स्कन्द	८७१
अभजत् पुरुष-	भा	७१
अभयं दर्शितं	भा	१४५
अभयं सर्व्वथा	राम, गरुड़	४०८, ४०९
अभावे न ह्य	शब्द	३२५ अनु
अभिचाराव-	भा	३३८
अभिमानोऽखिला-	भा	१०१८
अभिषेचयितुं	स्कन्द	१००३
अभिसन्धाय यो	भा	६७५
अभेदेन मया	भा	६६५
अभेदेनोच्यते	हय प	५७२
अभ्यर्च्चती स्वलक-	भा	३०८
अभ्यासयोगयुक्तेन	गी	१७६ अनु
अभ्यासयोगेन ततो	गी	१९१
अभ्यासेऽप्यसमर्थो-	गी	१९२
अमात्सर्य्यं	म भा	१८२
अमानित्व-	गी	१०५ अनु
अमर्शनिनः मानदेन	...	८३०
अमानी मानदः	भा	५८०
अमाययानुवृत्त्या	भा	६१८
अमी हि पञ्च-	पद्म	५८३
अयं देवो	गरुड़	४९२
अयं भगवतो-	भा	९१
अयं यो मानसो	भा प	२८६ अनु
अयं स्वस्त्ययनः	भा	८७०
अयं हि सर्व-	भा	१०५५
अयुतस्य जपे-	त्रै स त	४३५
अयोनिर्विष्णु-	म भा	१६५
अरिश्चैव च	स कु सं	८८४
अर्चादावर्चयेत्तावत्	भा	१०६ अनु, २५४
अर्चादावर्च्चयेद्यो	भा	६७६
अर्चायामेव	भा	२४५ अनु, २४९ ५४९
अर्च्चनं मन्त्र-	....	५६०
अर्च्चनं वन्दनं	भा	४७५
अर्च्चन्नुभयतः	भा	९३२
अर्च्चयन्ति सदा	वि र	८७७
अर्च्चयित्वा जगद्-	पद्म	९०५
अर्च्चयित्वा तु गोविन्दं	पद्म	२८५ अनु, ७३८
अर्च्चयेद्दानमाना-	भा	२५७
अर्च्चादौ हृदये	भा	२८६ अनु
अर्च्चायां स्थण्डिले-	,,	६८७
अर्च्चितश्चार्च्चये-	ब्रह्म	४२३
अर्च्चिताः सर्व्व-	स्कन्द	३१४
अर्च्चिते देव-	स्कन्द	३१४
अर्च्चैव विष्णौ	पद्म	२४८
अर्थज्ञात् संशय-	भा	२६२

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः	श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
अर्थपञ्चकविद्-	पद्म	५५६	अव्रतातम-	भा	७२६
अर्थवादं हरे-	का सं	४२५	अव्रतेन क्षिपेद्-	स्कन्द	९४६
अर्थानर्थेक्षया	भा	७०३	अशक्यमुक्तं	वि ध	७८५
अर्थान्नारभते	,,	८८९	अशीतिश्चतुर-	ब्रह्मवै	२७०
अर्वाक् पतन्त-	भा	६८१	अशुभं विद्यते	सहस्रनाम	४४७
अलङ्कुर्वीत	भा	९२१	अशेषजन्मोप-	भा	१७२ अनु, ६१६,८४८
अवजानन्ति मां	गी	१०६३	अशेषोपनिषद्वेद्यं	स्कन्द	१००३
अवज्ञानात्मतां	भा	९१६	अश्नामि प्रयता-	गी	३१०, १०३९
अवतारकथां	,,	७७०	अश्रद्दधानाः तुरुषा	गी	२०७
अवधारणमन्त्येक	पद्म	५१६	अश्रद्दधाने विमुखे-	पद्म	१७३ अनु, ७६६
अवधूतेन	भा	१०२७	अश्रेयसि नियोजनम्	ना प	२८६ अनु
अवमन्य प्रयान्ति	पद्म	८१७	अश्रौष्म भवतो	भा	१४४
अवरः श्रद्धयो-	भा	८८८	अश्वमेधसहस्रा-	स्कन्द	७७२
अवाङ्मुखः	निरुक्त	४१३	असङ्कल्पाज्जयेत्	भा	७०३
अवात्सीन्नारदो-	भा	५४७	असङ्गविज्ञान-	भा	६१७
अविचार्य्यं गुरुं	ब्रह्मवै	६०७	असज्जितात्मा	भा	८५
अविच्युतोऽर्थः	भा	८२०	असत्त्वात् कुमनीष्यसौ	भा	१०२६
अविज्ञाय विधानो-	कि र	८७६	असत्यपरि-	ब्रह्मवै	५०१
अवितारमिवा-	भा	३८१	असत्सु विहितो-	भा	७३२
अविद्यमानो-	भा	९७	असद्व्यापारो	वि या	९५१
अविद्यां निर्दहत्याशु	पद्म	३५५	असाकल्ये	अमर	१४१ अनु
अविद्याकर्म-	वि पु	५७५	असिते मुदिरे	चिन्ता	२२२
अविपक्वकषायाणां	भा	४४६, ५४०	अस्ति यज्ञपति-	भा	६११
अविवेकेन	भा	१०१६	अस्ति ह्येको	भा	१५३
अविश्रान्ति	पद्म	४३३, ८१८	अस्तु तावत्	गौत	२४२
अविस्मितं तं	भा	१०६ अनु, २०८	अस्त्वेवमङ्ग	भ	१४१ अनु, १४७ अनु,
अविस्मृतिः कृष्ण-	भा	१५६, ८५०			२३९ अनु
अविस्मृतिः श्रीधर-	भा	१५५	अस्माल्लोकात्	वृ	६२ अनु
अवैष्णवोपदिष्टेन	ना प	२३८, ६२१	अस्मिँल्लोकेऽथवा-	भा	८८७
अव्यक्तं पर्यु-	गी	२०१	अस्मिँल्लोके वर्त्तमानः	भा	५०६
अव्यक्तासक्त-	गी	१११ अनु, २०३	अस्मिन् देहे	हय प	९१०
अव्यक्ता हि	गी	२०३	अस्याधिष्ठातृ-	...	२८५ अनु
अव्याहतबले-	भा	८४ अनु	अहं कृत्स्नस्य	गी	५९०

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
अहं त्वकाम	भा	३६७
अहं त्वां सर्व-	गी	४६४, १०६१
अहं पुरातीत-	भा	३४० अनु
अहं भक्त-	,,	१८१ अनु
अहंममादि-	पद्म	७९७
अहं वो बान्धवो	वि पु	१०४२
अहं स च	गी	५९३
अहं सर्वस्य	गी	९६ अनु
अहं सर्वेषु	भा	२४४
अहं हि सर्व-	गी	२३९, ६५१
अहङ्कार इतीयं	गी	५८८
अहङ्कारनिवृत्तानां	ब्रह्मवै	६९६
अहङ्कारयुतानां	ब्रह्मवै	६९६
अहङ्कृतिर्मकारः	पद्म	६९३
अहञ्च भगवान्	भा	२१७
अहञ्च संस्मारित	,,	१५८
अहन्ते भविता-	...	३१२ अनु
अहन्यहनि	स्कन्द	९७३
अहमज्ञानजं	गी	१७०
अहमद्यैव मया	आल स्तो	९९३
अहममरगणा-	नृसिंह	३९६
अहमुच्चावचै-	भा	२५२
अहमेकैव	,,	१७९ अनु
अहमेवम्विधो-	गी	४६३
अहैतुक्यप्रति-	भा	१०
अहैतुक्यव्यवहिता	भा	१८८ अनु, ६७९
अहो अत्यद्भुतं	,,	१०१३
अहो क्षेत्रस्य	ब्रह्म	८६१
अहो नृजन्म-	भा	८६
अहो मधुपुरी	पद्म	८६३
अहोरात्राणि	पद्म	५९७
अहो बकी	भा	१०७०
अहो बत स्वपचो-	,,	२४७ अनु, ३५७
अहो विरज्येत	भा	७६६
अहो सुराणाञ्च	,,	३२३
अह्न्यापृतार्त्त-	,,	२७३
आकल्पात् पुरुषाः	वि ध	४१६
आख्यानं य-	भा	७८९
आगमोक्तेन	पद्म	९३७
आचरन् मदपा-	भा	१२४
आचारश्चैव	मनु	९४
आचार्य्यं मां	भा	६२७
आचार्य्यः पूर्व-	त	२०८ अनु
आचार्य्यचैत्य-	भा	१०५०
आचार्य्यवान् पुरुषो	छा	२०८ अनु
आचार्य्योऽरणि-	भा	६२२
आज्ञाच्छेदी	...	४९०, १००६
आज्ञायैवं	भा	१७३ अनु, २३८ अनु, ५८१
आततत्वाच्च	तन्त्र	२९ अनु
आतिथ्येन	भा	९२५
आत्मजं योग-	भा	७०५
आत्मनश्च परस्यापि	भा	२५६
आत्मनस्तुष्टि-	मनु	९४
आत्मना रमणेन	भा	१०००
आत्मनिक्षेप-	वै त	६९२
आत्मनैपुण्य-	भा	२२२ अनु
आत्मप्रभव-	,,	१०६, २९८
आत्मप्रसाद	भा	७६७
आत्मभावं	,,	१५२
आत्मा च कर्म्मा-	,,	२९२
आत्मा चायं	,,	९९९
आत्मानं चिन्तयेदेक-	,,	९६५
आत्मानं विश्व-	,,	८५६
आत्मानं शिव-	आ	८७५
आत्मानं सव-	भा	६९०

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः	श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
आत्मानमखिला-	भा	८३	आभीर-कङ्का	भा	१८८
आत्मानमपि यच्छति	,,	८५१	आमयो यश्च	भा	६४५
आत्मानमप्युपचया-	,,	२६७	आयुर्घृतम्	....	१३५ अतु
आत्मानमात्मन्य-	,,	६३२	आयुर्हरति	भा	१४९ अनु, ५२
आत्मानश्च सहस्रशः	हय प	५७४	आरब्धाश्च	,,	८८९
आत्मापरिज्ञान-	भा	३	आरम्भ कल-	,,	१०१५
आत्मा प्रियो—	,,	९	आराधनं	,,	४७४
आत्मा यथा	,,	४२	आराधनानां	पद्म	७३४
आत्मारामं पूर्ण-	,,	३८०	आराध्य कस्त्वां	भा	८५९
आत्मारामाश्च मुनयः	,,	११५ अनु १३४ अनु	आरुरोह हरेः	,,	७७१
आत्मारामोऽनया	,,	११४	आरुह्य कृच्छ्रेण	,,	५ अनु, ११० अनु,२८६
आत्मार्पितश्च	,,	३०९ अनु	आर्जवेनार्य्य-	,,	६७२
आत्मा वा अरे	वृ	७ अनु	आर्त्तो जिज्ञासु-	गी	५९२
आत्मा हि परमो	तन्त्र	२९ अनु	आर्य्या नताः	भा	६५७
आत्मा ह्यवधि	भा	८१	आलोड्य सर्व-	स्कन्द,पद्म,लिङ्ग	२६५ अनु
आत्यन्तिक	,,	६८१			१६४, ३०१
आहृतो वानु	,,	३११	आवर्त्तलक्षित-	भा	१८८ अनु
आदेहपाताद्-	ना प	८९५	आवाहनञ्चादरेण	आ	९१४
आद्यन्तवन्त	भा	६००	आवृत्तिरसकृदुप-	ब्र सु	१५३ अनु
आद्योऽवतारः	,,	२५४ अनु	आवेश्य तदघं	भा	१०२३
आधयो व्याधयो	स्कन्द	३५१	आशासते यदि	,,	१७३
आधारं सर्व-	हय प	५६६	आशासानो न	भा	४६६
आध्यात्मिकानु-	भा	६७२	आश्रमाणाञ्च	,,	९३६
आनन्दमात्र उप--	,,	३५४	आश्लेषादुभयो-	यहं प	५७४
आनन्दसंप्लवे	,,	५४१	आसुरं भाव-	गी	२८२
आनन्दानुभवा-	,,	७५५	आसुरस्तद्विपर्य्ययः	अग्नि, वि ध	२८३
आनुकूल्यस्य	बै त	१७३ अनु, ६९१	आस्थितः स	गी	५९४
आन्विक्षिक्या	भा	७०४	आहोष्यतामिह	भा	३२० अनु
आपत्कल्पेन	त्रै स त	४३४	इच्छतामकुतो-	,,	१९८ अनु, २७५ अनु,
आपन्नः संसृतिं	भा	१५५ अनु, ४१०			३१८ ७९१
आपाययति	,,	१७९	इच्छन् यो	,,	४६६
आपीय कर्णा-	,,	७६६	इच्छाकाङ्क्षा	अमर	१६५ अनु
आपीयतां कर्ण-	,,	७६८	इच्छापिधानं	भा	१७७

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः	श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
इज्येत हविषा	भा	७२३	इष्टं दत्तं	भा	६६७
इतरे ब्रह्म-	पद्म	२४१	इष्टापूर्तेन	भा	७२१
इतरेभ्यो यथा-	भा	९२१	इष्टोऽसि मे	गी	१०५९
इतरेषाञ्च	ना प	९५९	इह निःश्रेयसो-	भा	५१, १७४ अनु
इति ते ज्ञान-	गी	१०५८	इह लोके	स्कन्द	३३३
इति नृगति	भा	११५ अनु, ५२०	इहामुत्र च मोदते	भा	९४७
इति पुंसा-	,,	४७६	इहामुत्र च लक्ष्यन्ते	,,	६११
इति भागवतान्	,,	२१७ अनु	ईक्षा त्रयी	,,	९०
इति मे त्रिविधो	,,	६०२	ईक्षिता अपि	वृ नारद	४१४
इति मे निश्चिता	,,	१०२०	ईक्षेतात्मनि	भा	१०५१
इति यः शरणं	नृ पु	६९८	ईदृशानामथा	,,	६१३
इति विद्यातपो-	म भा	१६५	ईशनादेव	ब्रह्माण्ड	८०५
इति वेद स	भा	६०४	ईशयोर्जगदा-	भा	८५६
इति सङ्कल्प्य	,,	३२६	ईशादपेतस्य	,,	७
इति सर्वाणि	,,	१०५२	ईश्वरं मां	,,	२५४
इति स्वरूप-	पद्म	५१८	ईश्वरः सर्व-	गी	१०५६
इत्यचुत ङ्घ्रि	भा	१०७४	ईश्वरस्य तु सामर्थ्या-	पद्म	६९५
इत्यस्या हृदयं	,,	४६	ईश्वरे तदधीनेषु	भा	२९५ अनु, ५४४
इत्याख्या जायते	गरुड़	४९२	ईश्वरो जीव--	भा	२६४
इत्याह राजा	वि पु	४९६	ईहमाना निरा-	,,	४७४
इदं जपत	भा	७५	उकारः कैश्चिदिष्यते	पद्म	५१६
इदं तु ते	गी	१०६२	उक्तं पुरस्ता-	भा	१०२४
इदं भागवतं	भा	७७४, ७८८	उग्रो भस्मधरो	ब्रह्म	८१२
इदं वक्ष्याम्य-	गी	५८७	उच्चैस्तरां	भा	२२३ अनु
इदं हि पुंस-	भा	६९ अनु, ११४ अनु, ८२०	उच्छिष्टभोजिनो	,,	११०, ९८६
			उच्छेषितं	,,	३०८
इदमेकं	स्कन्द, पद्म	३०१	उञ्छवृत्तिः	,,	१३८
इदमेव सुनिष्कृतम्	भा	७८०	उताहो एक-	भा	१२५
इदमेव सुनिष्पन्नं	स्कन्द, लिङ्ग	१६४	उत्तमश्लोकचरितं	भा	७७४
इदानीं शृणु	तं स त	४०४	उत्तमश्लोक-लीलया	भा	७८९
इन्द्रमिन्द्रिय-	भा	३२ अनु	उत्तमश्लोकवार्त्तया	भा	५२
इन्द्रो महेश्वरो	स्कन्द	२९३	उत्तिष्ठता प्रस्वपता	वि ध	७८६
इयेष तदधिष्ठातुं	भा	७७२	उत्पथप्रति-	...	७१७

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः	श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
उत्पातायैव	ब्र या	८८६	ऋषीणाञ्चामला-	भा	३६३
उदाराः सर्व	गी	५६४	एक एव त्रिविक्रमः	ब्रह्माण्ड	८०६
उद्दिश्य देवता	पद्म	६४६	एक एव प्रकीर्त्तितः	वामन	८१०
उद्धवात्म-	भा	६६८	एक एवेश्वरः	हय प	५६२
उद्धवैनांसि	,,	३४४	एकः कृष्णे नमस्कारो	वि ध	६८४
उद्यन्नस्तञ्च	,,	१४६ अनु, ५२	एककालं	वि ध	८७०
उद्यानोपवना-	,,	२३८ अनु	एकतः कार्त्तिको-	स्कन्द	६४८
उद्वहन्तो दिवं	नृसिंह	३१७	एकतः सर्व-	स्कन्द	२६६ अनु
उद्विग्नबुद्धे-	भा	६६	एकभक्ति-	गी	५६३
उन्मादवन्नृत्यति	भा	७८२	एकविंशगणैः सार्द्धं	भविष्य	६६८
उपदेशं करोत्येक	ब्रह्मवै	६०६	एकस्मिन्नप्यति-	गरुड़	८५२
उपनय मां	भा	३१२ अनु	एकांशेन	गी	३३० अनु
उपनीतशत-	नृ ता	१०६ अनु	एकाग्रमनस-	वै त	२१४
उपप्लवाच्च	ना प	८६४	एकादशी महा-	भविष्य	६६५
उपयमुर्यद्दृच्छया	भा	१८१ अनु	एकादश्यां न नारद	ना प	६५६
उपर्य्यधस्तथा	वि ध	६१३	एकादश्यां न भुञ्जीत	ना प	६५०
उपागच्छद्दृयद्-	भा	५३३	एकादश्यां न भोक्तव्यं	स्कन्द अग्नि	६५१, ६५५
उपायात् पूर्वं-	,,	८८८	एकादश्यां निराहारो	मत्स्य, भविष्य	६५७
उपाया ह्यात्म-	,,	५६ अनु, ६३५	एकादश्यां प्रमादतः	गौत	६५६
उपारमेत	,,	१२१	एकादश्यान्तु यो	स्कन्द	६५८
उपासकं	अ सं	८६२	एकान्तं भाव-	कूर्म	२४३
उपासने स्वे	भा	६८६	एकान्तभक्ता	भा	२१६
उपास्तापि	,,	२६१ अनु	एकान्तभक्तचा को	,,	४५६
उपास्यममरो-	,,	५४८	एकान्तित्वाद्भगवति	,,	४६१
उपेयात् विन्दते-	,,	८८८	एकान्तिनो यस्य	,,	१६५ अनु
उभयोरेष	,,	५०७	एकान्तेन सदा	गरुड़	४६२
उरुक्रमस्या-	,,	२७६ अनु, ३२७	एकान्त्येको विशिष्यते	गरुड़	५१२
उरुगायोरु	,,	१०३४	एकोऽहं पञ्चधा	पद्म	२३४
ऊर्द्ध्वामिव गतिं	गरुड़	३०३	एतज्ज्ञान-	गी	१०५ अनु
ऋग्वेदो हि	वि ध	८१५	एतत्ते कथितं	भा	१४१
ऋतम्भरध्यान-	भा	१२७ अनु	एतत् संसूचितं	भा	६४४
ऋते नारायणा-	स्कन्द	८११	एतत् सर्वं	भा	७०६
ऋषित्वं वासुरा-	भा	४६६	एतदुक्तः प्रत्युवाच	वि ध	२२४

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदा:
एतद्‌योनीनि	गी	५९०
एतद्वेदितुमिच्छाम:	भा	१०१४
एतद्व सर्व्व-	भा	९३६
एतन्निर्विद्यमाना-	भा	१९८ अनु, २६५ अनु, २७३ अनु, २७५ अनु, ३१८, ७९१
एतयोरेव	पद्म	१६३, ३२४
एता: परं	भा	३२० अनु
एतावदेव जिज्ञास्यं	भा	२९५
एतावानेव यजतामिह	भा	१७४ अनु, ५१
एतावानेव लोके-	भा	११५ अनु, १२१ अनु, २१६ अनु, ७०, १६०, २७७
एतावान् योग	भा	८४८
एतावान् सांख्य-	भा	४५१
एते न ह्यद्‌भुता	स्कन्द	२६५
एतैरुपद्रुतो	भा	७७७
एवं कर्म्म	भा	२२३-२२४ अनु
एवं कुर्व्वति	ना प	१००१
एवं कृष्णे	भा	१०२२
एवं क्रिया-	भा	९३४
एवं जिज्ञासया-	भा	१२१
एवं त्रयी-	गी	१३८ अनु
एवं धर्म्मैं	भा	३०९ अनु, ६६८
एवं नानाविधै:	ब्रह्माण्ड	८०९
एवं निर्जित-	भा	१४१ अनु, ९२
एवं नृणां	भा	६४६
एवं प्रलभ्य-	भा	४६१
एवं प्रसन्न-	भा	२६
एवं य: पूजयेत	भा	६८५, ९३५
एवं यो वेत्ति	गी	७६९
एवं विदित्वा	पद्म	५१८
एवं विविच्य	भा	६००
ऐवं विहारै:	भा	२८६ अनु
एवं व्रत:	भा	१८८ अनु, ७८२
एवं सतत	गी	११४ अनु, १९९
एवं सदा	भा	२८३ अनु
एवं सन्दर्शिता	भा	३२५ अनु
एवं स्वचित्ते	भा	९
एव प्रेमादि	ब्रह्मवै	६
एवमग्न्यर्क-	भा	१०३
एवमघटमान-	भा	१५७ अनु
एवमेतन्निगदितम्	भा	८६ अनु
एष एव हि	भा	२२९
एष ब्रह्मा	गरुड़	४९२
एष भागवतो-	भा	५०३
एष वै भगवान्	भा	६२९
एषा बुद्धि-	भा	१२७
ऐकान्तिकी	ब्र या	८८६
ऐन्द्रकाग्नेय-	पद्म	८९९
ऐश्वर्य्यादिन्द्र	ब्रह्माण्ड	८०८
ओष्ठस्पन्दन-	वै चि	८४२
क उत्तम-	भा	७६४
क उ स्विदनु-	भा	११५ अनु
कं वा दयालुं	भा	१०७०
क: पण्डित-	भा	२६७
क: संशय:	गरुड़	१०३६
कठिनांशश्च	हय प	५६९
कतमोऽपि	भा	३२२ अनु
कथं तं क्षुल्लधी-	बृ नारद	८१९
कथं विना रोम-	भा	३८६
कथञ्चिद्‌यदि	भा	१३८
कथञ्चिन्नेक्षते	भा	१०१९
कथमस्यावतारस्य	गो ता	३३१ अनु
कथमासीद्‌दृढ़ा	भा	३६५
कथयस्व महाभाग	भा	१०४४

श्लोकप्रतीकानि	ग्रन्थनाम	श्लोकानुच्छेदाः
कथा इमास्ते	भा	७६०
कथामृतं श्रवण–	भा	४८
कथामृतनिधौ	भा	७७७
कथा लोक–	भा	१०४४
कदा गम्भीरया	ना प	१००१
कदाचित् कर्द्दमा–	वि ध	४३७
कदाचिदपि जायते	वृ नारद	४०१
कपालीति	ब्रह्म	८१२
कम्पाश्रु पुलका–	पद्म	१२०
करिष्यति भवान्	वि ध	७८४
करोति यद्यत्	भा	६३७
करोति विधि-	पद्म	८९०
करोति सततं	कूर्म	६५४
करोत्येधांसि	भा, पद्म	३४४, ३४५
करौ हरे–	भा	९९४
कर्णपीयूष–	भा	४५४
कर्णौ पिधाय	भा	८०२
कर्त्तव्यं वित्ता–	वि र	९४५
कर्त्तव्यं श्रद्धया	पद्म	९३७
कर्त्तव्यो जागरः	स्कन्द	९५२
कर्त्तुं मद्योग–	गी	१९३
कर्त्तुं समेताः	भा	२१२
कर्द्दमो ब्रह्मणो–	भा	६६०
कर्म चाभिनयन्	भा	१२३
कर्मणः पुरुषस्य	...	६४८
कर्मणानेन	कूर्म	६५४
कर्मणा मनसा	ब्रह्म	६९९
कर्मणामेतदप्या	कूर्म	६५५
कर्म ब्रह्मणि	भा	६४४
कर्मभ्यः प्रागयोग्यस्य	...	६४८
कर्माणि विफलानि	भा	६४१
कर्माण्यनन्य–	भा	७१
कर्म ग्रन्थि–	भा	२१
कर्म्मण्यस्मिन्ननाः–	भा	१४० अनु, १७९
कर्म्मनिर्हार–	भा	६७७
कर्म्मनिष्ठा द्विजाः	भा	९२०
कर्म्मबन्धात्	भा	५२७
कर्म्मभिर्भगवत्	...	२८९
कर्म्मभिर्वा त्रयी–	भा	७८
कर्म्ममोक्षाय	भा	९९
कर्म्मयोगश्च	भा	४७९
कर्म्मश्रद्धा	भा	३७५
कर्म्मस्मृति–	भा	६०१
कर्म्मिभ्यश्चाधिको	गी	२७९
कलाविच्छन्ति	भा	८३७
कलिं सभाजय–	भा	२७३ अनु, ८३५
कलिकाले	स्कन्द	८९६
कलिरित्येषु	भा	१०८
कलिस्तस्य कृते	वि ध	८४०
कलेर्दोष-	भा	१५३
कलौ कलुष-	ब्रह्मवै	१८०
कलौ कुर्वन्ति	स्कन्द	२७२ अनु
कलौ कृत-	वि ध	८४०
कलौ खलु	भा	८३७
कलौ तद्धरि–	भा	३१५ ८३३
कलौ न राजन्	भा	८४५
कलौ नष्टदृशा--	भा	८४७
कलौ नास्त्येव	....	८४४
कलौ युगे	स्कन्द	८३२
कलौ संकीर्त्त्य	वि पु	८३४
कल्पन्ते कल्पिताः	भा	६४६
कल्पन्ते येऽनु	भा	३१
कल्प्यते निष्फलाय	भा	१०६६
कविभिः पात्र–	भा	९६७